सिद्धयोग

स्थापक:
ोगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एक प्रति : रू. 20
द्विवार्षिक : रू. 320

वर्ष : 48, अंक : 07
अक्टूबर - 2015

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

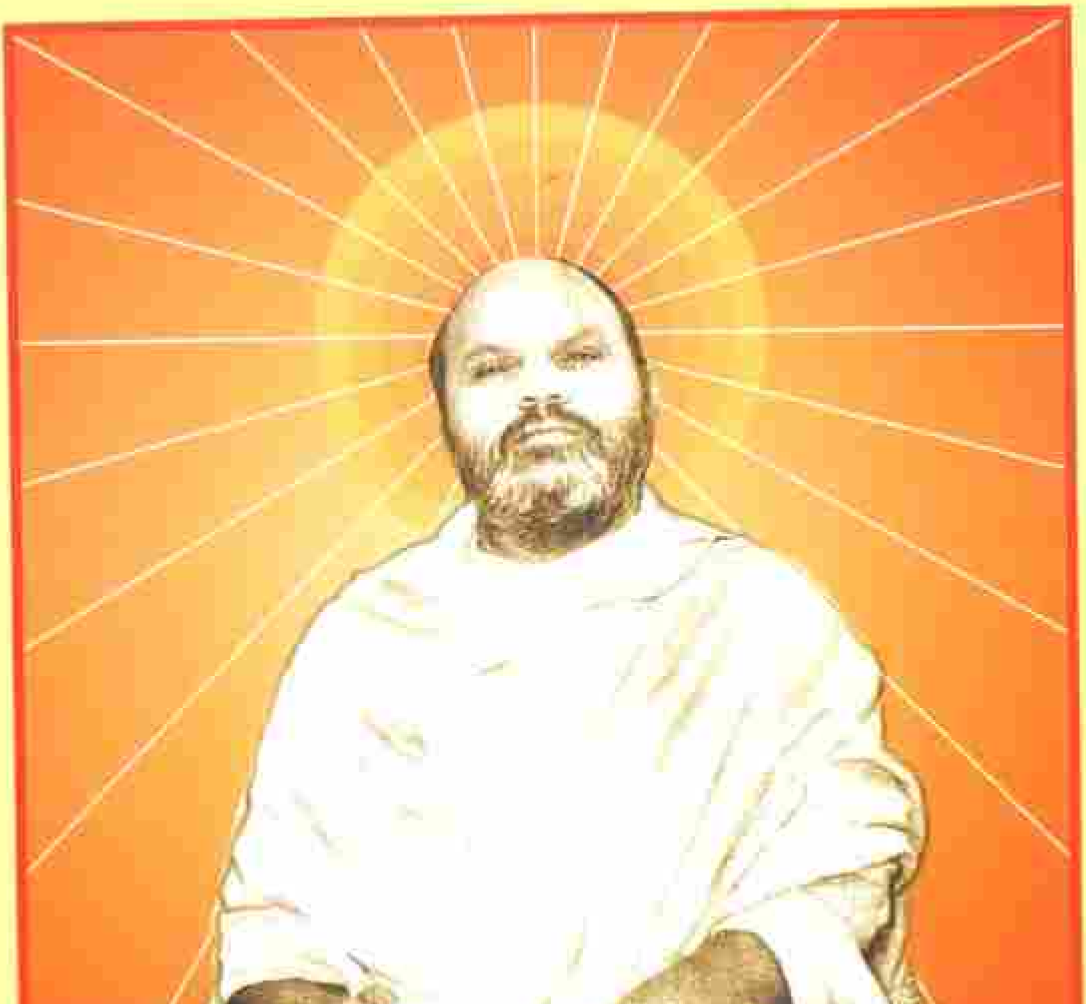

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 48 | अक्टूबर 2015 | अंक : 7

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु –
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।

कठोपनिषद् 2/2/11

अर्थात्

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाशक सूर्य देवता लोगों की आँखों से होने वाले बाहर के दोषों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा एक परब्रह्म परमात्मा लोगों के दुःखों से लिप्त नहीं होता क्योंकि सबमें रहता हुआ भी वह सबसे अलग है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spirtual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	9
3.	श्रीमद्भागवत में योग–परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह	13
4.	आया कर आया कर – जगदीश राए बंसल	18
5.	और जीत गए सिद्धों के सरदार – जगदीश राए बंसल	19
6.	जीवन में नौ का महत्व – डॉ. जे पी शर्मा	23
7.	पावन तुम्हारो नाम प्रभो – श्रीमती शारदा सिसौदिया	30
8.	मध्यश्रेणी के प्रबन्धकों के लिए प्रबन्धन सूत्र – डॉ. राजकुमारी	32
9.	शुभ सूचना	37
10.	योग–आसन	38
11.	कालजयी महाप्रभु द्वारा काल का विजय – वेदव्रत द्विवेदी	39

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 170.00
द्विवार्षिक	: रु. 320.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

या निशा सर्व भूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैंने तुम्हें पहले भी व्याख्यानों में कई बार समझाया है – '**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत्** ' ब्रह्मचर्य एवं तप से देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया है। केवल योगी व ब्रह्मचारी ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लिया करते हैं। यह ब्रह्मचर्य बल का बहुत बड़ा परिचय है। इसलिये भगवान कृष्ण की उक्ति के अन्दर '**श्रद्धया लभते ज्ञानम्**' तत्पर: संयतेन्द्रियः श्रद्धावान ज्ञान को प्राप्त होता है। यह कहकर श्रद्धा व संयम की महिमा कही गई है। श्रद्धा सतोगुण का उद्रेक होता है। योगदर्शन में आरम्भ में '**अथ योगानुशासनम्**' तथा इसके बाद **यागेश्चित्तवृत्तिनिरोधः** अर्थात् चित्तवृति का निरोध योग है, यह बतलाया है चित्तवृत्तीनाम् **नितरां रोधः** अर्थात् चित्तवृतियों का नितराम् रोध ही योग कहलाता है। अपने भाष्य में भगवान व्यास देव जी ने चित्त की पाँच भूमियों का वर्णन किया है तथा यह बतलाया है कि योग का प्रारम्भ कहाँ से होता है? पहले प्रकार का चित्त मूढावस्था का होता है। घोड़ा, गधा आदि प्राणी इस अवस्था के प्राणी होते हैं। उनके मन में दया धर्म नहीं होता, हिंसा और क्रोध रहा करता है। परपीड़ा में वह आनन्दित होते हैं। इन्हें आसुरि वृत्ति के लोग भी कहते हैं। इस अवस्था में चित्त को पूर्णरूप से तमोगुण ही आच्छादित कर लेता है। दूसरे प्रकार के प्राणी क्षिप्तावस्था के होते हैं। उनके रजोगुण प्रधान तथा सतोगुण और तमोगुण गौण रहा करते हैं। असंख्य प्राणी संसार में रहा करते हैं; किन्तु वे सभी सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इन प्रकृति संभव गुणों से युक्त रहा करते हैं। सतोगुण, रजोगुण आदि की भी मात्रायें होती हैं। कोई कम सतोगुणी है तो कोई ज्यादा। इसी प्रकार से रजोगुण और तमोगुण का भी मात्रा भेद से विभाजन होता चला जाता है। एक जैसा स्वभाव किसी का नहीं होता। क्षिप्तावस्था के प्राणियों का यह सिद्धान्त रहता है '**यावत् जीवेत् सुखम् जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्। भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः**' अर्थात जब तक मनुष्य जीवित रहे सुख से रहे, कर्जा उठाकर भी घी पीये। देह भस्म हो जायेगा फिर कहाँ से मिलेगा। ऐसी बातें रजोगुण वाले–प्रवृति शील लोगों के मन में रहा करती हैं वे इसी लोक को मानते हैं परलोक को नहीं मानते। ऐसे लोग अधर्म तथा अन्याय से भी पैसा कमाकर सुख भोगने में विश्वास रखते हैं। तीसरे प्रकार के प्राणी वे होते हैं जिनमें सतोगुण की प्रधानता आ जाती है। अन्य दो गुण गौण रहकर उनके चित्त में रहा करते हैं। इसको ऐसा समझना चाहिये कि जैसे कोई महात्मा है, उसका स्वभाव बहुत ही दयालु है। परोपकारी है। किन्तु कभी न कभी क्रोध की झलक उनमें भी आ जाती है यह जो क्रोध की झलक आई वह रजोगुण के कारण

आई। कभी–कभी प्रमाद आलस्य भी आ जाता है यह तमोगुण के कारण आ जाता है; किन्तु फिर भी उसमें सतोगुण प्रधान रहता है। ऐसे चित्त वाले प्राणियों को विक्षिप्तावस्था के प्राणी कहते हैं **क्षिप्ताद् विशिष्टम् विक्षिप्तम्**' अर्थात् जो क्षिप्त से विशिष्ट होते हैं ऐसे व्यक्ति धार्मिक होते हैं परलोक को मानते हैं। भगवान राम को मानते हैं,कृष्ण को मानते हैं, शिव को मानते हैं किन्तु इन्हें कैसे प्राप्त कर सकते हैं इसका उन्हें कोई रास्ता मालूम नहीं होता। वे सोचा करते हैं– **राम राम रटते रहो जब लग घट में प्राण। कबहुँ तो दीन दयाल के भनक पड़ेगी कान।**

वह मानता है–राम सर्व शक्तिमान हैं, कृष्ण व शिव सर्वशक्तिमान हैं उनके नाम रटने से वे मेरा भला कर देंगे। द्रोपदी ने भगवान कृष्ण को पुकारा **कृष्ण कृष्ण महा योगिन कृष्ण गोपी जन प्रिय: कौरवार्णव निमग्नाम् मां किं न पश्यसि केशव।**

अर्थात् हे कृष्ण आप तो महायोगी हैं। फिर गौरवार्णव में डूबती हुई मुझ द्रोपदी को आप क्यों नहीं देख रहे हैं? उनका महायोगिन कहने का संकेत यह था कि एक साधारण योगी भी अपने भक्तों को देख लेता है और रक्षा कर लेता है आप महायोगी हैं अत: मेरी रक्षा कीजिये। जब एक योगी एकाग्रावस्था में होता है संसार का प्राणी उसे चाहे कामना से याद करता है, क्रोध से याद करता है, प्रेम से याद करता है अर्थात जो उसके प्रति जैसी भावनायें रखकर याद करता है, वह उस योगी को मालूम हो जाता है। उन व्यक्तियों के मनोभाव के अनुसार ही उनका सूक्ष्म शरीर वैसे–वैसे ही हरकतें करता हुए दिखाई देता है। गीता में भगवान ने– **'या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी। यस्या जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने:।।** की बात कही है इसका अर्थ यह है कि सांसारिक लोग बाहर की वस्तुयें देखते हैं, बाहर के शब्द सुनते हैं, बाहर का स्पर्श करते हैं, किन्तु भीतरी जगत का उन्हें कोई ज्ञान नहीं होता। इसके विपरीत–मुनि लोग भीतरी दुनिया के अन्दर जागे हुये होते हैं। वे भीतर के नजारे देखा करते हैं, भीतर का स्पर्श पाते हैं, दिव्य रस लेते हैं, अपनी भीतरी दुनियाँ में ही मग्न रहते हैं, वे बाहर के नजारे नहीं देखा करते। उनके लिये बाहर की दुनियाँ का महत्व नहीं रहता।

किन्तु इसमें एक बात और भी है जो मैं तुम्हें कहना चाहता हूँ वह यह है कि अधिकांश समाधि लगाने वाले–भजन करने वाले रात्रि को ही भजन किया करते हैं। तीर्थ स्थानों में रहने वाले साधक चाहे हरिद्वार हो, ऋषिकेश हो, श्रीवृन्दावन हो–साधु लोग रात में ही ज्यादा अभ्यास किया करते हैं। उसका खास कारण मैंने पहले बताया था कि जब एक योगी ध्यान में बैठता है तो उस एकाग्रता में उसके सामने लोगों के चित्त आया करते हैं। उस योगी के प्रति यदि कोई प्यार की भावना करता है तो उसका सूक्ष्म शरीर प्यार का अभिनय करता हुआ दिखाई दे जाता है, यदि कोई क्रोध करता है तो क्रोध का अभिनय करता हुआ दिखाई दे जाता है, जिसका जैसा–जैसा भाव उस योगी के प्रति होता है, उसका वह भाव सूक्ष्म शरीर के द्वारा योगी के सामने व्यक्त हो जाया करता है। किन्तु जो लोग रात्रि में अभ्यास करते हैं उनके सामने ये बातें नहीं आती। इसका कारण केवल मात्र एक है कि उन सब के मन रात्रि में सुषुप्ति में चले जाते हैं '

अभाव प्रत्ययावलाम्बनम् वृत्तिर्निदा' निद्रा में ज्ञान का अभाव रहता है। निद्रा प्रगाढ़ होती है। उस समय मन दब जाता है; क्रियाशील नहीं रहता। जागृत अवस्था में हमारा मन क्रियाशील रहता है। स्वप्न के अन्दर भी मन इस प्रकार के विचारों के अन्दर घूमता रहता है; किन्तु सुषुप्ति में मन दबा रहता है। उस समय मन में किसी प्रकार का भाव नहीं रहता। इसलिये योगी लोग रात्रि में ध्यानाभ्यास करते हैं। क्योंकि दुनियाँ वालों का मन उस समय अपने कारण में–सुषुप्ति में लय रहता है। इसलिये लोगों की ओर से योगी को कोई विघ्न नहीं होता। अभ्यास में अन्तराय पैदा नहीं होता। लोगों की भावनायें आती रहे तो मन में अन्तराय आ जाते हैं। मुझे एक घटना याद आई। एक बार मैं और मेरे बड़े गुरु भाई ब्रह्म. गोपालानन्द जी श्री वृन्दावन गये। वहाँ हम दोनों रात्रि में केशी घाट चले गये। दोनों अभ्यास में बैठ गये। कुछ देर बाद उन्होंने मुझसे कहा– तुम सो जाओ। मैं ध्यान में बैठा रहूँगा। मैंने कहा–भाई जी ! आप सोयेंगे नहीं'। वे कहने लगे, नहीं। श्याम सुन्दर मुझ से कहते हैं कि यहाँ आकर भी तू सोयेगा? इसलिये मैं नहीं सोऊँगा। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि यह जो सेवा कुञ्जका दायरा इस समय देख रहे हो इससे एक–एक मील दूर तक सेवा कुञ्ज का दायरा है। सेवा कुञ्ज में दिव्य दृष्टि रहती है। इसलिए भाई गोपालानन्द जी ध्यान में ही बैठे रहे उन्हें दिव्य दर्शन व अनुभव होते रहे। भगवान का दिव्य तेज वहाँ व्याप्त है अत: वहाँ सांसारिक अन्तराय नहीं आया करते।

योगी जब समाधि में होता है उसकी सब वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं–**आपूर्यमाणम चल प्रतिष्ठं समुदमाप: प्रविशान्ति यद्वत। तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न काम कामी।।**

जिस प्रकार से सारे नदी नाले समुद्र में आकर विलीन हो जाते हैं। उसी प्रकार से योगी की समस्त वृत्तियाँ समाधि में लीन हो जाती हैं। **स: शन्तिमाप्नोति न कामकामी**' ऐसा योगी ही शान्ति को पाता है। कामनाओं का चिन्तन करने वाला शान्ति नही पाता हमने आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के चरणो में सूक्ष्म जगत की अनेक घटनायें देखीं हैं। अच्छे–अच्छे ध्यानी ध्यान में जो देखा करते थे वह सत्य ही होता था। एक बार मैं ऋषिकेश आश्रम में आनन्दकन्द प्रभु जी के चरणों में बैठा हुआ था। हमारे अन्य कई गुरु भाई व योगिराज मुल्खराज जी महाराज आदि भी बैठे हुये थे। हमारे ध्यानी गुरु भाईयों ने कई दिन देखा कि कोई आकर श्री प्रभु जी के चरणों में बार–बार प्रणाम कर रहा है। प्रभु जी उसे बार–बार आशीर्वाद दे रहे हैं। वास्तव में वह साधु आया नहीं था, सूक्ष्म से ही आया था। श्री प्रभु जी के चरणों में बैठे ध्यानियों ने ध्यान में देखने का प्रयत्न किया कि आखिर यह कौन साधु है जो नित्य प्रात: श्री प्रभुजी को प्रणाम करने आता है। उन्होंने ध्यान में देखा वह साधु ब्रह्मपुरी में रहता है और नित्य वहीं से श्री प्रभु जी को प्रणाम किया करता है। देखो ! जिस समय हम लोग भी ध्यान में बैठते हैं तो श्री प्रभु जी को प्रणाम करते हैं। जंगलों में जो साधु रहते हैं, उनका गुरुदेव से सम्बन्ध होता है। वे वहीं से गुरुदेव को प्रणाम करते हैं। उनका प्रणाम गुरुदेव तक पहुँचता है। ध्यानियों ने उस ब्रह्मपुरी वाले साधु को देखा कि यह

रोज श्री प्रभु जी को प्रणाम करता है और प्रभु जी उसकी सहायता करते हैं। इसी प्रकार एक और घटना मुझे याद आई। श्री प्रभु जी काश्मीर की यात्रा पर गये उनके साथ में श्री मुल्खराज जी महाराज तथा बहिन ऋषिदेवी आदि थी। वहाँ जम्मू के राजा हरिसिंह श्री प्रभु जी के भक्त थे। श्री प्रभु जी को उन्होंने कुछ दिन अपने यहाँ ठहराया। श्री प्रभु जी के ध्यानी बच्चे ध्यान में देखा करते थे कि एक पागल सा आदमी नित्य आकर श्री प्रभु जी के चरणों में विनीत भाव से प्रणाम करता है और प्रभु जी उसे प्यार से आशीर्वाद देते हैं। ध्यानी लोग एक दूसरे लड़के को भी देखा करते थे कि गन्द में लिबड़ा रहने वाला लड़का नित्य प्रभु जी के पास प्रणाम करने आता है और आशीर्वाद पाता है। एक दिन महाराज हरिसिंह ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि महाराज ! आज कहीं घूमने चलें। श्री प्रभु जी ने कहा– आज हम तुम्हारा पागल खाना देखेंगे। महाराज को बहुत आश्चर्य हुआ कि पागल खाना भी कोई देखने की चीज है। किन्तु गुरुदेव की आज्ञानुसार पागलखाना पहुँच गये। वहाँ एक पागल बन्द था। वह प्रभु जी को देखते ही अन्दर कोठरी से ही बार–बार दण्डवत प्रणाम करने लगा। श्री मुल्खराज महाराज आदि देखने लगे कि यह वही लड़का है जो प्रभु जी को नित्य प्रणाम करने आता है और प्रभु जी खूब प्यार करते हैं। श्री प्रभु जी ने कहा– उसे छोड़ दो यह पागल नहीं है यह योगी है। प्रभु जी की आज्ञा से उसे छोड़ दिया गया। प्रभु जी ने कहा– इस पहाड़ी पर चढ़ जाओ एवं आगे की साधना में लग जाओ। वह तुरन्त पहाड़ी पर चढ़ गया। दूसरे दिन फिर इसी प्रकार से भ्रमण पर चल पड़े। उस दिन प्रभु जी ने कहा–आज गन्दे नाले की तरफ चलते हैं। श्री प्रभु जी ने मुल्खराज महाराज को आगे भेज दिया और कहा–ध्यान में देखना जिस–जिस के चेहरे पर तेज फैल रहा हो उनसे कहना ! प्रभु जी आ रहे हैं ! श्री मुल्खराज जी आगे–आगे गये। उन्हें आगे एक लड़का मिला। गन्दे नाले में पड़ा हुआ था मल मूत्र उसके पास से बह रहा था। मक्खियाँ भिनक रही थीं। श्री मुल्खराज जी ने उसके तेज को देखकर कहा। प्रभु जी आ रहे हैं। उसने कहा– हाँ आ रहे हैं। वह ही मुझे यहाँ डाल गये थे। वह ही उठायेंगे। श्री प्रभु जी वहाँ पहुँच गये। उनके पहुँचते ही वह लड़का खड़ा हो गया और तेजी से उनके चरणों में लिपट गया। श्री प्रभु जी ने उसे उठा लिया और उस गन्द से लिबड़े हुये को ही कण्ठ से लगा लिया। उसे आगे की साधना बता कर उसे भी सामने की पहाड़ी पर चले जाने की आज्ञा दे दी।

एक बार हमारा योग प्रचार का कार्यक्रम जम्मू काश्मीर का था। वहाँ हमें नन्दलाल नाम का योगी मिला था। उसकी वहाँ काफी प्रसिद्धि थी। हमारा यह अनुमान है कि गन्दे नाले वाला वह लड़का ही नन्दलाल था। अस्तु। मैं ये सब बातें इस बात को समझाने के लिये ही कह रहा हूँ कि जो चिन्तन शील साधक हैं वे गुरुदेव को नमन करते हैं उनका चिन्तन करते हैं उनका वह नमन व चिन्तन उन तक पहुँच जाता है। उस पागल ने पागल खाने में भी श्री प्रभु जी का चिन्तन रखा और गन्दे नाले वाले ने भी चिन्तन रखा। श्री प्रभु जी को ये सब पता रहीं तभी तो वे पागलखाने गये, गन्दे नाले की ओर गये। ये सब उनके भीतरी ज्ञान का परिणाम है। मैं तुम्हें

विक्षिप्तावस्था वाले प्राणियों के विषय में समझा रहा था। इसके पश्चात् चौथी श्रेणी के प्राणी एकाग्रावस्था के होते हैं। उनमें सतोगुण चमक उठता है। सतोगुण ही एकाग्रता का दाता होता है। एकाग्रता वाले मन में दया होती है, धर्म होता है, प्रेम एवं करूणा होती है। भगवान ने **'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम'** कहा है। श्रद्धा चित्त की प्रसन्नता का नाम है। सतोगुण का उद्रेक श्रद्धा है। एकाग्रावस्था से पहले जो चिन्तन करते रहे, भजन करते रहे वह बाह्य वृत्ति को रखकर करते रहे। हम स्तुति करते हैं माला घुमाते हैं। रामाय नमः, शिवाय नमः का जप करते हैं किन्तु अनुभूति नहीं होती। **'अकरणात् करणं श्रेयः'**। कुछ न करने से करना अच्छा है किन्तु मन के एकाग्र न होने से हमें विशेष उपलब्धि नहीं हो पाती। जब मन की एकाग्रता से सतोगुण चमक उठता है तो जिसका चिन्तन करते हैं उनके दर्शन हमें होने लगते हैं इसी को **सम्प्रज्ञात योग** कहते हैं। चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन तो असम्प्रज्ञात समाधि में ही होता है। व्युत्थान में अथवा समाधि से उठने के बाद जिसकी जैसी वृत्ति स्वभाव होता है, वह वैसे ही चेष्टा करता है। इसी को **'वृत्ति सारूप्यमितरत्र'** कहते हैं। गीता में भी भगवान ने **'सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि'** कहा है। अर्थात् ज्ञानवान भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है। इसीलिये सिद्ध योगी लोग अपने शिष्यों पर शक्ति पात करके उन्हें हिमालय में ही बैठा लेते हैं उन्हें फिर संसार में आने नहीं देते। संसार में रहेंगे तो वर–शाप के झमेले में पड़ जायेंगे और फिर पतन हो जायेगा। दूसरे शिष्य वे होते हैं जो दुनियाँ में रहते हुये गुरूदेव के पूर्ण नियन्त्रण में रह लेते हैं। गुरूदेव उन्हें यम–नियम का पालन कराते हैं। गुरूदेव के थपेड़े खाकर वे अपनी वृत्ति को इतना शुद्ध बना लेते हैं कि उन्हें क्रोध आता ही नहीं। ऐसे साधक योगी के विषय में देखने वाले कहा करते हैं– **'चण्डालः किमयम् द्विजतिरथवा शूद्रो किं तापसः'**। कोई कहता है यह चाण्डाल है कोई कहता है तपस्वी है। लोग अपनी–अपनी मति से अन्दाज लगाते हैं। किन्तु उस पर किसी का प्रभाव नहीं पड़ता है। वह न किसी के वचन पर प्रसन्न होते हैं और न ही क्रुद्ध होते हैं। इस प्रसंग में मुझे एक घटना याद आई एक बार श्री प्रभुजी ब्र. गोपालानन्द जी पर खुश हुये। कहने लगे। गुरू बाजार में चला जा वहाँ एक नंगा साधु है देख आ। ब्र. जी उसके पास गये और उसे देखा। उसके नाक मुंह से मल बह रहा था। अपने उपस्थिन्द्रिय को पकड़े हुये पेशाब करता हुआ सा चल रहा था उसका नाम रामू था। ब्र. जी उसे देखकर प्रभु जी के पास आ गये। प्रभु जी कहने लगे। देख आये उसे ? वे कहने लगे। 'हाँ प्रभु जी देख आया वह तो बड़ी बुरी हालत में है'। श्री प्रभु जी कहने लगे क्या तुम्हें भी रामू की तरह बना दें। ब्र. गोपालानन्द जी कहने लगे–प्रभु जी वह तो बिल्कुल पागल है आप मुझे उस की तरह न बनायें। श्री प्रभु जी ने ब्र. गोपालानन्द जी को फिर भेजा। अच्छा अब तुम चौरस्ती अटारी चले जाओ वहाँ भी एक साधु है उसे देख आओ। ब्र. गोपालानन्द जी ने वहाँ जाकर उसे देखा। मल मूत्र की गली में पड़ा हुआ गन्द से लिबड़ा हुआ था। देखा भी नहीं जा रहा था। वे वापिस आ गये। श्री प्रभु जी ने कहा– देख आये? क्या तुम्हें भी लल्लू की तरह बना दें ? गोपालानन्द जी ने उन्हें बाहरी दृष्टि से देखा था

इसलिये कहने लगे– नहीं प्रभु जी। मुझे आप ऐसा न बनावें। श्री प्रभु जी ने गोपालानन्द जी से कहा–अब तू ध्यान में बैठकर इनकी स्थिति देख। ब्र. गोपालानन्द जी ने ध्यान में देखा कि वे दोनों अखंड मण्डलाकार तेज में झिलमिल रहे थे। बहुत ऊँची स्थिति थी उन दोनों की। कहने का तात्पर्य यह है कि जो योगी वृत्ति सारूप्य से ऊपर उठ जाता है तो उसके लिये **शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः** की बात चरितार्थ हो जाती है। चाहे वह मलमूत्र में पड़ा रहे या अन्य किसी स्थिति में उनकी आत्मिक स्थिति बनी रहती है। इसलिये जिन शिष्यों को सद्‌गुरू शक्तिपात कर लेते हैं उन्हें फिर हिमालय से नीचे नहीं आने देते। उपाय प्रत्यय वाले योगी जो गुरूदेव के थपेड़े खाते हुये उनके नियन्त्रण में रह लेते हैं। वे गुरु कृपा से संसार के विघ्न बाधाओं से आहत नहीं होते। वे न किसी को वर देते हैं और न किसी को शाप देते हैं। इस प्रकार के योगियों के लिये योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि जी ने एक बात का संकेत दिया है–

'**मैत्रीकरूणामुदितोपेक्षाणाम् सुखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।** अर्थात् योगी को चाहिये कि वह सुखी व्यक्ति से मैत्री भाव रखे। दुःखी व्यक्ति के प्रति करूणा भाव रखें। पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्न रहे और पापी को देखकर उपेक्षा करे।

जो गुरूदेव के नियन्त्रण में रहकर अपनी कठोर वृत्तियों पर अधिकार पा लेता है वह पतन से परे हो जाता है। मैत्री आदि भाव उस योगी के स्वभाव में आ जाते हैं। इसलिये गुरूदेव के नियन्त्रण में रहकर साधक को चाहिये कि अपनी वृत्तियों पर अधिकार करे और उत्तरोत्तर साधना में बढ़ता चला जाये। तभी वह योग के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकता है।

यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान्।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पञ्जरादिव।।
व्यवहारसहस्त्राणि यान्युपायान्ति यान्ति च।
यथाशास्त्रं विहर्तव्यं तेषु त्यक्त्वा सुखासुखे।।
यथाशास्त्रमनुच्छिन्नां मर्यादां स्वामनुज्झतः।
उपतिष्ठन्ति सर्वाणि रत्नान्यम्बुनिधाविव।।

(योगवशिष्ट ६/२, ३०,३१)

जो पुरुष उदार-स्वभाव तथा सत्कर्म के सम्पादन में कुशल है, सदाचार ही जिसका विहार है, वह जगत के मोहपाश से वैसे ही निकल जाता है, जैसे पिंजरे से सिंह। संसार में आने-जाने वाले सहस्त्रों व्यवहार हैं। उनमें सुख और दुःख-बुद्धि का त्याग करके शास्त्रानुकूल आचरण करना चाहिये। शास्त्र के अनुकूल और कभी अच्छिन्न न होने वाली अपनी मर्यादा का जो त्याग नहीं करता, उस पुरुष को समस्त अभीष्ट वस्तुएँ वैसे ही प्राप्त हो जाती हैं, जैसे सागर में गोता लगाने वाले को रत्नों का समूह।

• सम्पादकीय

योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 106 वाँ पावन प्राकट्य दिवस

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

कभी-कभी धराधाम पर भगवान् से 'तद्भाव' युक्त महापुरुष अवतरण करते हैं तथा भगवान् के संस्कारी जीवों का कल्याण करने के लिए योग के दिव्य ज्ञान का उपदेश कर उन्हें साधना के पथ पर लगाकर मुक्ति का अधिकारी बना देते हैं। ऐसे ही एक महापुरुष हरियाणा प्रान्त में एक छोटे से गाँव में अवतरित हुए हैं जो युगों-युगों तक भक्तों के लिए स्मरणीय रहेंगे। गांव अलुपुर में इनका प्रादुर्भाव हुआ। अपने भावी पिता को अपने आगमन का संकेत दे दिया था और कहा था कि मेरी माँ को दिव्य रसायनों का सेवन कराना। अपने ध्यानयोग के बल से पूर्व जन्म का वृत्तान्त जान लिया था। नेपाल में 'गण्डकी नदी पर स्थित 'त्रिवेणीधाम'' में रहकर बहुत समय तक समाधि का अभ्यास करते हुए शरीर के अत्यन्त वृद्ध होने पर अपनी इच्छा से उसका त्याग करके इस जन्म के पिता पूज्य पं. देवीराम जी के यहाँ नूतन शरीर धारण किया। शैशवावस्था से ही अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द का साक्षात्कार बना रहता था। नाना प्रकार के बाल-लीलाओं को करते हुए अत्यन्त आल्हादित रहा करते थे। इनके सौम्य व आनन्ददायिनी रूप को देखकर 'पिताश्री' ने इनका नाम 'चन्द्रदत्त' रखा। ये अपने भक्तों को शीतलता व शान्ति प्रदान करने वाले महापुरुष के रूप में विख्यात हुए।

पिता ने इन्हें बाल्यकाल से ही ऊँचे संस्कार दिये। पिताजी स्वयं अत्यन्त धार्मिक विचारों वाले तथा तपस्वी महापुरुष थे। इन्हें वे 4-5 वर्ष की अवस्था में ही गाँव के पास नहर पर ले जाकर स्नान कराते तथा अपने साथ ही गायत्री मंत्र के जाप से बिठा देते थे। प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही कर दी थी। तत्पश्चात् हरियाणा व पंजाब के कई विद्यालयों में अध्ययन कराते रहे। अन्त में ऊँची शिक्षा के लिए इन्हें पंजाब में लाहौर में आचार्य विश्वबन्धु जी के संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया। आचार्य जी बड़े ही विद्वान तथा तपस्वी धर्मात्मा महापुरुष थे। यहाँ पर कई वर्षों तक संस्कृत का अध्ययन किया। किन्तु भगवान श्री कृष्णचन्द जी इन्हें बार-बार आकर्षित करते रहे। अन्ततोगत्वा वैराग्य की लहरें उमड़ने लगी। विद्यालय छोड़कर श्री वृन्दावन धाम आ गये और भगवान के दिव्य लीला स्थलों व मन्दिरों के दर्शन करते

हुए आनन्दित होते रहे। भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी की कृपा से अल्पायु में ही योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये और योग मार्ग में प्रवेश कर समाधि में लीन रहने लगे। ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे। अब आप प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग में आरूढ़ होने का विचार बनाने लगे। किन्तु अन्तर्यामी श्री प्रभुजी ने इन्हें ठीक मौके पर जाने से रोक दिया। एक पत्र में उन्होंने लिखा था 'चिरंजीव! हम बस्तियों में रहकर योग विद्या का प्रचार कर रहे हैं और तुम जंगलों में जाने की तैयारी कर रहे हो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। अत: हिमालय की ओर जाने का विचार त्याग कर हमारी आज्ञाओं का पालन करो। अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वनों में जाने का विचार त्याग दिया।

श्री प्रभुजी की आज्ञा से योग पिपासुओं को 'शक्तिपात दीक्षा प्रणाली' से दीक्षा देने लगे। साधकों में अद्‌भुत रहस्यमयी क्रियायें स्वत: होने लगीं। ध्यान की ऊँची-ऊँची स्थितियाँ प्राप्त होने लगी। गुरुदेव शिष्यों का एक बड़ा झुण्ड इकट्ठे करने में रुचि नहीं रखते थे न ही प्रचार के माध्यमों से ख्याति चाहते थे। योग जिज्ञासु के धैर्य एवं श्रद्धा को परख कर कई वर्षों के बाद योग दीक्षा प्रदान करते थे। वस्तुत: अच्छे संस्कार युक्त साधक ही योग में आगे बढ़ पाते हैं। जिनके अच्छे संस्कार नहीं हैं शक्तिपात के बावजूद भी उनका पतन देखा गया। ऊर्वरक भूमि में बीज खाद डालने पर ही उत्तम फसल हो सकती है। ऊसर भूमि में डाला गया बीज अंकुरित नहीं हो पाता। मन्द संस्कारी व्यक्ति कदाचित् गुरुचरणों तक पहुँच भी जाये तो वहाँ भी उसे माया के ही दर्शन होते हैं। फलत: श्रद्धा बन नहीं पाती। उत्कृष्ट संस्कारवान व्यक्ति को गुरुदेव स्वत: ही खींच लेते हैं अपनी व्यापक सत्ता का परिचय देते हुए स्वप्न या ध्यान में दर्शन दे जाते हैं। साधक दिव्य दर्शन पाकर आनन्दित रहने लगता है धीरे-धीरे प्रभु का चरण शरण मिल जाता है। सद्‌गुरु चरण मिल जाने पर साधक आत्म विभोर हो उठता है जन्मों से उसे जिस वस्तु की तलाश थी वह उसे मिल जाता है। उसे अब सब कुछ मिल गया। 'भुक्ति-मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नम:' गुरुदेव तो सांसारिक भोग्य वस्तु भी प्रदान करते हैं उसे मुक्ति भी दे देते हैं। गुरुदेव जब 18-20 वर्ष के ही थे उस समय ही आपको चित्त निर्माण आदि सिद्धि स्वायत्त थी अगढ़भत्ता के प्रसंग में आपने स्वयं ही इस तथ्य का उद्‌घाटन किया है। श्री प्रभुजी ने गुरुदेव से एक बार कहा था - तुम्हें श्री वृन्दावन धाम के वास के समय ही 'प्रभु' ने सारी शक्तियाँ दे दी हैं अत: तुम योग विद्या के प्रचार में लग जाओ।

सन् 1938 में श्री महाप्रभु जी के तिरोधान के बाद श्री गुरुदेव जी श्री सिद्धगुफा सवांई धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये।

धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये। स्थान की दिव्य छटा को देखकर आपने अपने योग प्रचार के कार्य के लिए इसे ही कार्यक्षेत्र चुन लिया। साधकों को शक्तिपात दीक्षा प्रदान की। रोगी व्यक्तियों को अपने नेति धोति आदि षटकर्म क्रियाओं का अभ्यास कराया एवं जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को कराना प्रारम्भ किया। इन क्रियाओं का अद्भुत लाभ मिलने लगा। सभी बीमार जो असाध्य से असाध्य भी आते गुरुदेव के संकल्प से स्वस्थ होकर ही घर लौटते थे।

ध्यान योग की दीक्षा संस्कारी साधक स्वयं चमत्कारिक तरीके से आकर लेते। इनमें रघुनन्दन प्रसाद टाट वाला का नाम उल्लेखनीय है। भगवान् शिव की आज्ञा से वे गुरुदेव से योग दीक्षा लेकर साधना में लगे। तीव्र तपश्चर्या एवं गुरु भक्ति के फलस्वरूप वाक्सिद्धि एवं दिव्य दृष्टि जैसी सिद्धियाँ प्रकाशित होने लगी। इसी प्रकार से जम्मू कश्मीर का संसार सिहँ दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी हुए हैं। कई गुमनाम साधक कन्दराओं में साधना रत हैं। पाकिस्तान की सीमा पर गुलमर्ग–खिलमर्ग की तरफ़ गुरुदेव का एक शिष्य साधु रहा करता था। एक बार वाराणसी के गुरुभाई प्रमोद एडवोकेट और विन्ध्यवासिनी भाई उस क्षेत्र में घूमने गये तो अचानक वह योगी इनके सामने आकर 'जयगुरुदेव' कहने लगा। यह आश्चर्य में पड़ गये। इस नितान्त जंगल में यह कौन हो सकता है। उस साधु ने कहा – मैं भी योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ। उनकी आज्ञा से साधना में लगा हुआ हूँ। वे मेरी हर प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। उस साधु ने गद्गद् कण्ठ से गुरुदेव की शक्ति व महिमा का गुणगान किया।

आपने कई प्रान्तों में योग आश्रमों की स्थापना की। वहाँ पर नि:शुल्क योग की क्रियायें, आसन, प्राणायाम आदि सिखाये जाते हैं और बीमार व्यक्ति साधन से स्वस्थ होकर योग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग विद्या को गुरुदेव ने कभी बेचा नहीं अर्थात् कभी फीस नहीं ली गई। नेति आदि भी नि:शुल्क दिये व सिखाये जाते थे। आज भी वही परम्परा चल रही है। 'सन्तु सन्तु निरामया:' की भावना को गुरुदेव ने हमेशा सामने रखा है।

अपने देश में कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हुए हैं उनमें कई बार इनकी अध्यक्षता रही है। 1986 में भी विश्व योग सम्मेलन में आप साधना–सत्र के अध्यक्ष थे। आप श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ योगी रहे हैं यही कारण है कि सैद्धान्तिक और अन्तरंग योग के ज्ञाता होने के कारण आपकी छवि व व्यक्तित्व अन्यों से विशिष्ट होती थी। योग के दुरूह सिद्धान्तों को आप बहुत ही सरल सुबोध भाषा में बता कर योग सिद्धान्तों को साधकों में कूट–कूट कर भर देते थे। योग के सिद्धान्तों को सरल ढंग से समझाने के लिए आपने 'योग सिद्धान्त' नामक यौगिक पुस्तक के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। इसके अतिरिक्त

के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। इसके अतिरिक्त बीसियों पुस्तकें आप द्वारा रचित हैं। धन संग्रह का आपका कभी उद्देश्य नहीं रहा। चन्दा या फीस के आप हमेशा विरोधी थे। आप कहा करते थे – यहाँ आश्रम में जो कुछ भी है तुम लोगों का 'तुम लोगों के लिए ही है। हमारा इसमें कुछ नहीं है। हम तो निमित्त मात्र हैं श्री प्रभुजी ही करण कारण हैं।' आपका सरल व आडम्बर रहित जीवन था।

इस प्रकार से गुरुदेव निःस्पृह भाव से ही कर्म करते थे। अपने शिष्यों के लिये आप कल्पतरू हैं, उनके चरण तल में बैठकर जो भी कामना की जाती है सभी पूरी होती है। 'प्रणमामि गुरुम् गुरु कल्पतरूम्' कल्प वृक्ष रूप गुरुदेव को हम सदा ही नमस्कार करते हैं। आपके चिन्तन मात्र से जीवन की कठिनाइयाँ व दुःख दूर हो जाते हैं। आप अपने शिष्यों के अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं इसलिए ही संसार में आप सर्वबन्धद्य होते हैं।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो अपने जीवन को योगमय बना लेता है उसी का जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म-साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है। आज गुरुदेव के लाखों शिष्य/प्रशिष्य योग साधना में आरूढ़ हैं और उज्जवल व दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हैं।

करुणामूर्ति श्री गुरुदेव का 106 वाँ प्राकट्य दिवस उनके सभी आश्रमों में विजयादशमी के दिन बड़े ही धूम धाम से मनाया जा रहा है। इस परम पावन वेला पर गुरुदेव के पावन चरणों में सभी शिष्यों का कोटि-कोटि नमन है।

परमात्मा की उपलब्धि

तिलेषु तैलं दूधनीव सर्पि-

राप: स्रोत: स्वरणीषु चाग्नि:

एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ

सत्यनैनं तपसा योऽनुपश्यति।

अर्थ- तिल में तेल, दही में घी, स्रोतें में जल और अरणियों में अग्नि जिस प्रकार छिपे रहते हैं, उसी प्रकार वह परमात्मा अपने हृदय में छिपा हुआ है। जो कोई साधक उसको सत्य के द्वारा संयम के द्वारा, तप के द्वारा देखता रहता है यानि चिन्तन करता रहता है उसे वह परमात्मा अवश्य ग्राह्य हो जाता है। अर्थात् ऐसे संयमी योगी साधक को परमात्मा अवश्य प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

स्कन्ध छः के तीसरे अध्याय में यमराज एवं असफल लौटे यमदूतों के वार्ता का वर्णन है। यमदूतों ने कहा– प्रभो ! अब तक संसार में कहीं आपके द्वारा निर्धारित दण्ड की अवहेलना नहीं हुई थी, किन्तु अजामिल के प्राण हरण करते समय चार अद्भुत सिद्धों ने आपकी आज्ञा का उलंघन करा दिया–

तस्य ते विहितो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना।
चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्भिता ।। 4 ।। स्क.6, अ.3

यमराज श्री नारायण के चरण कमलों का स्मरण करते हुये दूतों से बोले– मेरे अतिरिक्त इस चराचर जगत के एक और स्वामी है। उन्हीं के अंश रूप और उनके माया के अधीन हम सभी है। उन्हें न ऋषि जानते हैं और न देवता या सिद्धगण ही फिर मनुष्य, विद्याधर, चारण और असुर भला क्या जानेंगें ?

न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः
कुतश्च विद्याधर चारणादयः ।।19।। स्क.6, अ.6

अतः इस जगत में जीवों के लिये मात्र कर्तव्य यह है कि उनके नाम का जप–कीर्तन करते हुये भक्तियोग को प्राप्त हो जावे। देखो ! अजामिल भी एक बार नामोच्चारण करने मात्र से मृत्यु पास से छुटकारा पागया।

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ।। 22।।
नामोच्चारणमहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्यु पाशाद मुच्यत ।। 23।। स्क.6, अ.3

" भक्ति योगो " अर्थात् भक्ति–योग का आश्रय लेकर सम्पूर्ण अन्तःकरण से आत्म निवेदन करने से समाधि–लाभ एवं मोक्ष प्राप्त होता है। भक्ति योग का तात्पर्य साकार विग्रह एव उनके अपरमित गुणों में मन को एकाग्र करने से है। भगवद्गीता के बारहवें अध्याय में अर्जुन ने योगेश्वर कृष्ण से पूछा–प्रभो ! जो सतत् आप मे अपने चित्त का आधान कर आपकी उपासना करते हैं तथा जो अव्यक्त–अक्षर की उपासना करते हैं, उनमें क्या अंतर है। भगवान ने स्पष्ट समझाते हुये कहा– अर्जुन ! जो श्रद्धा से परिपूर्ण अपने मन को मेरे में लगाते है वे भी तथा जो अव्यक्त की उपासना कुटस्थ भाव से करते है वे भी एकमेव समाधि को ही प्राप्त होते हैं। परन्तु अव्यक्त की उपासना कष्ट साध्य है।

क्लेशोऽधिकतरस्ते षामव्यक्तासक्त चेतसाम।
अव्यक्ता हि गतिर्दु:खं देहवद्भिरवाप्यते ।। गीता ।। श्लोक 5, अ.12

भक्तियोग, सिद्धयोग, अथवा भगवान पातंजलि प्रणीत सूत्र, " **वीतराग विषयं वा चित्तं" तथा ईश्वर प्रणिधान द्वा** " आदि में मंत्र योग, अनन्यता भाव ईष्ट में, अभ्यास योग, अन्त में, सभी कर्म फलों का त्याग तथा त्याग से निरन्तर शांति लाभ ही बताया गया है। इसके साध्य होने पर क्या लक्षण होगें यह देखें –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्र: करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कार: समदु:ख सुख: क्षमी।। 13।। गी. अ.12
संतुष्ट: सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चय: ।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्त: स में प्रिय: ।। 14।।

कहने का तात्पर्य यह कि सद्गुरु प्रदत्त साधना में दृढ़ता से लगकर एवं उनके उपदेशित आदेशों के अनकूल चलकर ही कोई वैराग्य सम्पन्न साधक समाधि रूपी परिपूर्ण योग को प्राप्त कर सकता है। अजामिल मृत्यु के समय में हुये अनभूति एवं उपदेश से वैराग्य को प्राप्त होकर घर परिवार से असंग हरिद्वार में कठोर साधना द्वारा सायुज्य मोक्ष को प्राप्त किया था।

तीसरे स्कन्ध में, संक्षेप से स्वायम्भुव मनवन्तर में कैसे सृष्टि सृजन हुआ बताया गया है। अब छठे स्कंध के चतुर्थ अध्याय में परिक्षित ने परमयोगी श्री शुकदेव जी से प्रकृति आदि कारणों के भी कारण भगवान अपनी जिस शक्ति से सृष्टि करते हैं, जानने की जिज्ञाशा किया।

इति सम्प्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणि:।
प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तम: ।।3।। स्क.3, अ.4

श्रीशुकदेव जी ने कहा – राजा प्राचीनबर्हि के दस पुत्र जिनका नाम प्रचेता था जो समुद्र में खड़े होकर तप कर रहे थे। तप से उठने पर देखा सारी पृथ्वी पेड़ों वनस्पतियों से घिर गयी है। उन्हें वृक्षों पर बड़ा क्रोध आया। उन सबने वृक्षों को दग्ध करने हेतु अपने योग बल से वायु एवं अग्नि की सृष्टि की। पृथ्वी से वृक्षों का सफाया होता देख चन्द्रमा ने उन्हें समझाया और पर्यावरण का महत्व समझाया। ईश्वर ने वनस्पतियों और औषधियों की उत्पत्ति प्रजा के हितार्थ उनके खान–पान हेतु किया है। जो पुरुष ह्रदय के उबलते हुए भयंकर क्रोध को आत्मविचार के द्वारा शांत कर लेता है, वह समयान्तर से तीनों गुणों पर विजय प्राप्त कर लेता है। चन्द्रमा प्रचेताओं को इस प्रकार समझा कर, शांत किया।

य: समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् ।
आत्मजिज्ञासया यच्छेत स गुणानविवर्तते ।। 14।। अ.4, स्क.6

चन्द्रमा ने प्रचेताओं को प्रम्लोचा अप्सरा की कन्या प्रदान किया। उस कन्या के गर्भ से प्राचेतस दक्ष की उत्पत्ति हुई। यही दक्ष मानस शक्ति से जल, थल और आकाश में रहने वाले देवता, असुर व मनुष्य आदि की सृष्टि की।

दक्ष की मानसी सृष्टि में विस्तार नहीं हो पाया। अत: दक्ष अघमर्षण तीर्थ में घोर तप करते हुये " **हंस गुह्य** " मंत्र का अनुस्मरण करते रहे। समाधि काल में मन के उपरत होने से यह नाम–रूपात्मक जगत का लोप हो जाता है। उस समय स्वरूप स्थिति के द्वारा आप प्रकाशित होते हैं। प्रभो ! आप शुद्ध हैं आपको हमारा नमस्कार है – " **हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नम:** "। प्रभो ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये तथा मुझे आत्मप्रसाद से पूर्ण कर दीजिए – " प्रसीदतामनिरुक्तात्म शक्ति: "। भगवान श्री शुकदेव जी ने कहा – परीक्षित ! विन्ध्याचल के अघमर्षण तीर्थ में दक्ष के सामने भगवान नारायण प्रकट हुये और बोले – परम भाग्यवान् दक्ष। अब तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गयी, क्योंकि तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति प्रेमभाव का उदय हो गया है –

प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान्।
यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गत:।।43।। अ.4, स्क.6

प्रिय दक्ष ! यह पञ्चजन प्रजापति की कन्या असिक्नी है। इसे तुम अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करो। अब तुम स्त्री सहवास रूप धर्म को स्वीकार करो। इससे तुम प्रजा का विस्तार कर सकोगे। दक्ष ! अब तक मानसी सृष्टि होती थी, परन्तु अब तुम्हारे बाद सारी प्रजा मेरी माया से स्त्री–पुरुष संयोग से उत्पन्न होगी।

छठे स्कन्ध के पाँचवे अध्याय में दक्ष द्वारा नारद जी को शाप देने की कथा वर्णित है। योगेश्वर भगवान शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं कि– भगवान के शक्ति संचार से दक्ष ने असिक्नी से हर्यश्व नाम के दस हजार पुत्र उत्पन्न किये। आगे चलकर दक्ष की आज्ञा से वे प्रजा उत्पन्न करने हेतु, तपस्या करने, सिन्धु नदी एवं समुद्र के संगम पर नारायण – सर नामक तीर्थ पहुँचे। बड़े – बड़े मुनि और सिद्ध पुरुष यहाँ निवास करते हैं –

तत्र नारायण सरस्तीर्थं सिन्धुसमुद्रयो:।
संगमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम्।।3।। अ.5

दस हजार हर्यश्व उग्र तपस्या में जब रत थे, श्री नारद जी को उन पर दया आयी। नारद जी ने उनके पास जाकर कहा – वास्तव में तुम लोग मूर्ख ही हो। जब तुमने पृथ्वी का अन्त ही नहीं देखा तब सृष्टि कैसे करोगे ?

श्री नारद जी ने एक आध्यात्मिक पहेली उनके सामने रक्खा।

1. एक ऐसा देश है, जिसमें एक ही पुरुष है।
2. एक ऐसा बीवर है, जिससे बाहर निकलने का रास्ता ही नहीं है।
3. एक ऐसी स्त्री है, जो बहुरूपिणी है।
4. एक ऐसा पुरुष है जो व्यभिचारिणी का पति है।
5. एक ऐसी नदी है, जो आगे–पीछे दोनों ओर बहती है।
6. एक घर ऐसा है, जो पचीस पदार्थों से बना है।
7. एक ऐसा हंस है, जिसकी कहानी बड़ी विचित्र है।

8. एक ऐसा चक्र है जो छूरे एवं वज्र से बना स्वयमेव घूमता रहता है।

उपर्युक्त तथ्यों को जबतक जान नहीं लोगे सृष्टि कैसे कर सकोगे ?

देवर्षि नारद की कृपा एवं स्वयं की बुद्धिमत्ता से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया –

1. लिंग शरीर (कारण शरीर) ही जीव का अनादि बन्धन रूपी पृथ्वी है। इसके नष्ट होने पर ही आत्मा अपने स्वरूप में शुद्ध रूप से अवस्थित होता है।

2. ईश्वर एक है, वही सबका आश्रय है, उनका साक्षी तुरीय है।

3. मनुष्य जब अपने अन्तर्ज्योति: स्वरूप को जानलेता है तब वह आवागमन से मुक्त हो जाता है।

4. यह बुद्धि ही सत, रज, तम को धारण करने वाली व्यभिचारणी स्त्री के समान है। अत: विवेक ख्याति को प्राप्त किये बिना शांति कहाँ है ?

5. माया ही दोनों तरफ बहने वाली नदी है। यह सृष्टि एवं प्रलय युगपत् रूप में करती रहती है।

6. आत्मा का पच्चीस तत्वों का घर ही अद्‌भुत है।

7. ईश्वर का स्वरुप बताने वाला सद् शास्त्र ही वह हंस है जो नीर–क्षीर विवेकी है।

8. यह काल ही एक चक्र है, निरन्तर घूमता हुआ सबको ग्रसता है। ऐसा अन्तर बोध होते ही हर्यश्वों ने श्री नारद जी की परिक्रमा करके निवृत्त मार्गी हो, आत्माराम में निमग्न हो गये।

आत्मा का पच्चीस तत्वों का घर क्या है।1. महत्तत्व, 2. सत, 3. रज, 4. तम, 5. अहंकार 6. आकाश, 7. वायु, 8. अग्नि, 9. जल, 10. पृथ्वी, 11. शब्द, 12. स्पर्श, 13. तेज, 14. रस, 15. गंध (तन्मात्रायें) पाँच ज्ञानेन्दीय और पाँच कर्मेन्द्रिय यही 25 से स्थूल, सूक्ष्म, कारण (लिंग शरीर) रूपी घर में जीवात्मा वास करता है।

दक्ष प्रजापति को अपार दुःख हुआ। श्री नारदजी द्वारा अपने दस हजार पुत्रों को वीतरागी बना देने से वे शोक संतप्त हुये। पुन: अपनी भार्या असिन्की के गर्भ से एक हजार पुत्र उत्पन्न किये। उन्हें भी सृष्टि विस्तार के लिये तप करने भेजा। इनका नाम शबलाश्व था। इन सबों को भी नारद जी ने आत्मोपदेश देकर कृतार्थ किया। श्री नारद जी का दर्शन अमोघ है। **नारदोऽमोघ दर्शन:।**

इधर दक्ष–प्रजापति को जब शबलाश्वों के बारे में ज्ञात हुआ तब वे क्रोध से भर कर नारद जी को श्राप– दिया जाओ, लोक लोकान्तरों में भटकते रहो। कहीं भी तुम को ठहरने को ठौर नहीं होगा।

श्री शुकदेव जी ने कहा – परीक्षित ! देवर्षि नारद ने ' बहुत अच्छा ' कहकर दक्ष का शाप स्वीकार कर लिया। साधुता इसी का नाम है। बदला लेने की शक्ति रहने पर भी दूसरे का किया अपकार सह लिया जाए :-

प्रतिजग्राह तद् बाढं नारद: साधुसम्मत: ।
एतावन् साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वर: स्वयं ।।44।। अ.5, स्क.6

प्रसंगत:- श्री सद्‌गुरु भगवान योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी का सम्पूर्ण जीवन इसका उदाहरण रहा है। अपकारी, निन्दक द्वेश भाव भावित ईर्ष्यालु लोगों को भी अपने निश्छल प्रेम के पात्र बना कर उनका उद्धार किया।

संवाई ग्राम के ठाकुर पातीराम (जिन दिनों संवाई गुफा के कुटिया में श्री गुरुदेव जी एकाकी रहा करते थे) स्वयं अपने जीवन के उत्तरार्ध में रोते हुये कहते थे कि मैं श्री गुरुदेव जी को नाना प्रकार से त्रासित करता रहता परन्तु वे कभी मेरे पर क्रोधित नहीं हुये, आज वृद्धावस्था में स्वयं बुलाकर अपने बच्चे की भाँति हमारी सम्हाल कर रहे हैं।

शुभ सूचना

बड़े हर्ष से सूचित करते हैं कि हमारे वाराणसी टोड़रपुर स्थित योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन योगाश्रम का द्वितीय वार्षिक योगिक सत्संग अक्टूबर 29, 30, 31 एवं 1, 2 नवम्बर 2015 को पूर्व वर्ष की भाँति बड़े ही धूम धाम से मनाया जा रहा है। उत्सव की शोभा बढ़ाने के लिये श्री सिद्धगुफा संवाई धाम से आचार्य दासलाल जी महाराज तथा डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप अम्बाला से, श्री गुरु प्रसाद जी आंध्र प्रदेश से व अन्य कई विद्वान पधार रहे हैं। अत: सभी गुरु भाई बहिनों से निवेदन है कि उक्त तिथियों में आश्रम में आकर योग सिद्धान्तों का श्रवण करें। योगासन एवं चिकित्सा का पूरा लाभ लें। अपने साथ अधिक से अधिक गुरु भाई बहिनों को लाकर पुण्य के भागी बनें।

जय गुरूदेव !

निवेदक
योग प्रचार मंडल वाराणसी
कछवा एवं मिर्जापुर

नोट - टोड़रपुर आश्रम राजा तालाब से 05 कि.मी. आगे तथा वाराणसी से 15 कि.मी. पीछे इलाहाबाद की ओर मोहनसराय के पास ही स्थित है।

सम्पर्क सूत्र - 08574406843, 09450708838, 09453357801

आया कर - आया कर

– जगदीश राए बंसल

आया कर आया कर, तू सिद्ध गुफा पर आया कर
नहाया कर नहाया कर, तू 68 तीर्थ नहाया कर
ध्यान लगे से पाप कटेंगे
जन्म मरण के फंद कटेंगे
ज्योति से ज्योति लगाया कर ।

आया कर .... (1)

प्रभू राम लाल हमरे रख वारे
खुल जाएँगे भाग हमारे
गुरु चन्द्र मोहन को ध्याया कर ।

आया कर .... (2)

गुरु देव की महिमा न्यारी
गाते हैं योगी मुनि ब्रह्मचारी
तू अखण्ड ज्योत जलाया कर ।

आया कर .... (3)

अधम भी यों गुरु गुण गावे
सब भाईयों को अर्ज लगावे
तू मंगला आरती गाया कर ।

आया कर .... (4)

... और जीत गए सिद्धों के सरदार

– जगदीश राए बंसल 'अधम'

प्रातः स्मरणीय जगत नियन्ता अखिल ब्रह्माण्ड नायक बाबा गुरु महाप्रभु श्री राम लाल जी महाराज एवं अखण्ड मण्डलाकार अनन्त विभूषित योग योगेश्वर गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने लाड़ले बच्चों पर हर समय, हर जगह कोई भी संकट आने पर अपनी दया के बादल उसी प्रकार से बरसा रहे हैं, जिस प्रकार से अपना स्थूल शरीर रहते हुए बरसाते थे। भले ही उस आपत्ति के समय कोई गुरु देव भगवान को याद कर पाए अथवा चूक जाए अथवा उपेक्षा कर जाए। ये कृपाएँ चाहे किसी दुर्घटना से बचाने की हों, या तड़पते रोगी को प्राण दान देने की हों, या झगड़े मुकदमे से उभारने की हों, या घरेलू कलह आदि विपत्ति से राहत दिलाने की हों। गुरुदेव भगवान अवश्य–अवश्य अपनी कृपाएँ करते हैं।

प्रस्तुत लेख में इसी प्रकार का एक प्रसंग अपने श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम से निष्ठा रखने वाले आराध्यादेव के विशेष कृपा पात्र पटना निवासी श्री अलोक कुमार ने बतलाया। आपको याद दिलाता चलूं कि दिनांक 15 जुलाई से 24 जुलाई 2014 तक श्री दासलाल जी महाराज ने गुरु परंपरा के चलते जगत कल्याणार्थ एक अनुष्ठान का आयोजन संवाई में किया था। इस अवसर पर देश के कोने कोने से आकर गुरु भाई साधना करते हैं। इसी अवधि में आदरणीय गुरुभाई जी ने बतलाया कि –

बात सन् 1979 की है। मैं अपने पिता श्री के साथ पवित्र नगरी श्री प्रयाग राज स्थित अपने श्री सिद्ध योग प्रशिक्षण केन्द्र , रामानुज मार्ग पर गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन महाराज के दर्शनार्थ गया था इस धर्म भूमि पर कल कल बहती पतित पावनी गंगा मैय्या, यमुना मैय्या और सरस्वती मैय्या के संगम में स्नान लाभ लेकर , अपने योग शिविर में प्रातः कालीन आरती, गीता पाठ एवं यौगिक प्रवचनों से अनेक साधकों के साथ अपना जीवन सार्थक किया। पश्चात् जब गुरु महाराज जी शिविर में उपस्थित अपनी पर्ण कुटि में जा विराजे तब सुअवसर का लाभ लेते हुए मेरे पिता जी ने श्री चरणों में मेरी दीक्षा के लिए निवेदित किया, जिसे आराध्य देव जी ने सहर्ष स्वीकार कर मुझे दीक्षित बना कर कृतार्थ किया।

शिविर से घर लौटने के पश्चात, हमारा कुछ समय तो सामान्य रहा मगर शीघ्र मैं मतवाला – बकवादी और उग्रबुद्धि वाला बन कर अपने मार्ग से भटक गया। घर वालों ने मेरे सुधारने के अनेक प्रयास किए। यहाँ तक कि मुझे विवाह के सूत्र में भी बान्ध दिया। समय के चलते मैं दो बच्चों का पिता भी बन गया, किन्तु मेरे जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया। कहते हैं ना कि :–

एक होती है लकड़ी – एक होती है रबड़ ।
एक रहती है अकड़ी – एक रहती है लचर ।।

हद तो तब हो गई जब एक दिन मेरी कुबुद्धि ने महा प्रभूजी एवं गुरु देवी जी के स्वरूपों को ही पटक दिया, कि गुरु जी ने मेरा कुछ नहीं किया ......। इसके पश्चात मैं और उग्र हो गया। भक्त कबीर जी लिखते हैं कि :–

ऊँचे कुल में जामियां – करनी ऊँच न होय।
सौरन कलश सुरा भरी – साधु निन्दा सोय।।

अर्थात कोई ऊँचे कुल में पैदा हो कर, बुरा कर्म करे जैसे सोने के पात्र में शराब भरे तो बुरा ही कहेंगे।। परिणामत: मेरे पिता ने मेरा कान पकड़ कर घर से बाहर का रास्ता दिखा दिया। किं कर्तव्य विमूढ़ सा मैं स्वयं, मेरी पत्नी, और दोनों बच्चों सहित सड़क पर आ गये। हाँ घर से निकलते – निकलते मैंने प्रभू जी एवं गुरु जी के जिन स्वरूपों को पटका था, अवश्य अपने साथ ले लिए। पहली बार मुझे लगा कि आया ऊँट पहाड़ के नीचे। अब कुछ–कुछ अकल ठिकाने आई। सोचने लगा :–

किसे सुनाऊँ कौन सुनेगा – यह देश हुआ बेगाना।
कहाँ मिलेगा रैन बसेरा – दो पैरों को ठिकाना।।

हमारे पैर चलते – चलते रेलवे स्टेशन पर पहुंच गए। आगे कहाँ जाएँ ? अब तो मर–मर ही जीना होगा। यह दिन हमारे लिए सबसे काला दिन था। चारों तरफ की घन घोर घटा से आशा की एक पतली सी किरण ने करवट ली। बोली – गूंगे का मूंह कुत्ता चाटे। भक्त कबीर ने भी कहा है :–

भूखा भूखा क्या करे – क्या सुनावे लोग।
भांडा घड़ा निज मुख दिया – सोई पूर्ण जोग।।

अर्थात तू अपने को भूखा भूखा कह कर क्या सुनाता है ? लोग क्या तेरा पेट भर देंगे ? याद रख ! जिस प्रभू ने तुझे मुख दिया है, वही तेरा काम पूर्ण करेगा।

अत: मैंने आव देखा न ताव, फट से यहीं स्टेशन पर कुली का कार्य सम्भाल लिया। अब हमारी क्षुधा डायन के बुझाने का प्रबन्ध तो हो ही गया। मेरे पिता जी उस समय जिला शिक्षा अधिकारी थे, उनको जो ठेस लगी होगी.....। मरता क्या नहीं करता। इस परिस्थिती में मुझे गुरु देव की याद रह – रह कर आने लगी। सुना सुनाया कुछ गुन–गुना भी लेता था।

गहना कर्मणो गति – सन् 1992 में स्टेशन पर ही मैं तीसरे लल्ला का पापा बन गया। मेरा श्रम तीव्र गति शील हो गया। मैं गुरु देव का अपराधी गुरु देव का ही शरणागत हो गया। मेरी मानसिक आरती–पूजा गुरु मन्त्र चलने लगा। या यों कहिए कि मेरी तल्लीनता बढ़ने लगी। किसी साधक ने सत्य कहा है कि :–

उसके दर पै सुकुन मिलता है
उसकी दूआ से नूर मिलता है
जो झुक गया गुरु चरणों में
उसे कुछ ना कुछ जरूर मिलता है।।

आ गई लहर शिवा के मन में – एक दिन अचानक एक यात्री ने मुझ कुली को पुकारा। मैंने उस यात्री सर का सामान आदर सहित ले जा कर रेलगाड़ी में उसकी बताई सीट पर सजा दिया। सर जी ने खुश हो कर जो मेहनताना दिया, मुस्कान के साथ लेकर मैंने अपनी जेब में डाल लिया। उसे नमस्कार कर मैं चलने लगा तो सर ने पूछा, क्या तुम सर्विस करोगे ? प्रत्युत्तर में मैंने **" यश सर "** कहा। उसने मुझे अमुक दिन, अमुक स्थान पर मिलने को कहा। तदनुसार मैं समय पर मिलने चला गया। ये सर जिला कलेक्टर थे जो एक प्राईवेट स्कूल भी चलाते थे। इन्होंने तत्काल मुझे एक हजार पाँच सौ रू. के मासिक वेतन पर स्कूल का प्रबन्धक नियुक्त कर दिया। किसी भाग्यशाली गुरु भाई ने सच कहा है कि :–

दूर्गम बनों से मार्ग बना देती है गुरु कृपा।

तिमिर में दीपक जला देती है तेरी कृपा ।।

गुरु कृपा ने शीघ्र ही येन केन प्रकारेण सर के स्कूल को चार चान्द लग गए। मुझे लगने लगा कि संकट मोचन गुरुदेव ने मेरे विलष्ट संस्कार क्षय कर दिए है। अब मेरी भावना श्री चरणों में लीन रहने लगी। किसी साधक ने बहुत अच्छा कहा है कि भावना का संसार पृथ्वी से भी विशाल होता है। अतः–

मेरे भाग्य ने पलटा खाया।

गुरु देव ने वरद हस्त बढ़ाया ।।

बात यों बनी कि सन् 2005 में सर जी अपने प्रमोशन पर जाने लगे तो काल चक्र–युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले गुरु देव जी की विशेष कृपा से सर जी ने इस स्कूल को उसी किराए पर मेरे हवाले कर दिया। बोलिए सद्‌गुरु देव भगवान की जय......। मैं अनुग्रहित (माला–माल) हुआ। मैंने स्कूल का नाम बदल कर महा प्रभू जी के नाम पर रख लिया। विद्यार्थियों की संख्या में उफान आ गया। मैं रोमांचित हो उठा कि स्टेशन पर मैं यात्रियों को सर–सर करता था, जगत नियन्ता, आशुतोष करूणा सागर ने मुझे ही बड़का सर बना दिया। सभी जानते हैं कि :–

दानी है मेरी सरकार–पल में भर दिए भण्डार।

मगर यह भी सभी जानते हैं कि जीवन विपत्ति की परिभाषा है। जब यह हाई स्कूल अपनी पराकाष्ठा पर था तो सन् 2009 में उक्त सर के समधी जी का देहान्त हो गया जो इस स्कूल के भूपति थे। उस भूपति की पत्नी ने मुझ पर स्कूल खाली करने का मुकदमा ठोक दिया। मेरे द्वारा इस केस की पैरवी करने से पहले ही एक विलक्षण घटना घटी। पाँच जुलाई 2009 को पूरा पुलिस तन्त्र अचानक स्कूल में आ धमका। उन्होंने मुझे कड़क आदेश दिया कि अभी तुरन्त स्कूल खाली करो। उपर से आदेश है। मेरे कुछ बोलने से पहले ही मेरे साथ मारपीट शुरु कर दी। कमरों से सामान उठा–उठा कर बाहर फैंकने लगे। विद्यार्थी भय भीत हो कर बाहर भाग गए। त्राही – त्राही मच गई। इसे ही कहते हैं सियासत के मर्तबान में भ्रष्टाचार का आचार। मगर. .....

जहाँ इष्ट होता है – वहाँ अनिष्ट नहीं होता।

चमत्कार हुआ – अकारण दयालु, अनाथ नाथ की लीला कौन जान सकता है ? किसी की गुप्त सूचना पर या यों समझिए कि गुरु देव की लीला से आनन फानन में मिडिया ने स्कूल में प्रवेश किया और पुलिस की तमाम करतूत अपने कैमरे में कैद कर ली। पुलिस अधिकारी अवैध करतूत से चेहरा छिपा कर स्कूल से पलायन कर गए । स्कूल अनहोनी से बच गया। कहते हैं – **गुरु मेहरबान तो चेला पहलवान।**

तेरी नजरें बदली – कि नजारे बदल गए।

किस्ती ने मोड़ा रूख – कि किनारे बदल गए ।।

वास्तव में वादी की ऊपर तक गहरी घुसपैठ है। इसी दबाव में पुलिस ने अपने तीखे तेवर दिखाए। मिडिया ने इस अत्याचार को खूब रंग दिया। आगे चल कर मुकदमा हाई कोर्ट जा पहुँचा। मुझे बराबर धमकियाँ मिलती रही, गुण्डे आते रहे, मार देंगे – उठा ले जाएंगे–आग लगा देंगे.......वरना स्कूल खाली करो। मन्त्री का श्रेय लेने के लिए पुलिस तन्त्र कोई भी जुल्म ढाने को लालायित था। लेकिन भव भय हारी, सिद्ध शिरोमणी गुरु देव का शरणागत यह अधना सा सिपाही हिमालय की चट्टान की तरह सब सहन करता रहा।

वास्तव में यह लड़ाई अस्थाई कुर्सी पर बैठे महा मन्त्रि और सर्वोच्य सिंहासन पर विराजमान सृष्टि रचेता, सिद्ध योगाधिपति गुरु देव भगवान के मध्य ही थी। वादी और प्रतिवादी तो मात्र कागजी फाईल तक ही सीमित थे। अत: बड़ी–बड़ी अपील–नई–नई दलील गौरवन्त वकील की एक न चली। अन्तत: सिद्धों के सरदार गुरु देव श्री चन्दमोहन जी महाराज हाई कोर्ट बिहार से ससम्मान जीत गए। बोलिये सद् गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की जय ।

सात द्वीप नव खण्ड में, श्री सद्गुरु से बड़ा न कोय।

करता करे ना कर सके श्री सद्गुरु करे सो होय ।।

" जीवन में नौ का महत्व "

– डॉ. जे. पी. शर्मा, पौंटा साहिब , हिमाचल प्रदेश

अंक गणित में अंकों का बड़ा ही महत्व होता है। सारा अंकगणित विज्ञान एक अनूठा विज्ञान है। ब्रह्म जैसे सत्य है उसी प्रकार गणित विज्ञान सत्य है। इसे सीधा तथा उल्टा हल करने पर उत्तर तथा प्रश्न आता है। अंकों की खोज हमारे पूर्वजों ने ही की है। गणित में एक से लेकर नौ अंक होते हैं। इनमें नौ का अंक अतिशुभ होता है। सभी अंकों में सबसे बड़ा नौ होता है। मानव सभ्यता तथा हिन्दुमान्यताओं के अनुसार ' नौ ' को शुभ–कल्याणकारी माना जाता है। संस्कृत भाषा में इसे 'नव' कहा जाता है। नव का अर्थ नया, नवीन, तथा नूतन होता है। अंकों की गिनती में जहाँ नौ का अंक आता है उसके बाद कोई अन्य अंक ही होगा इस तरह से नौ के बाद में नवीनता ही आती है। अतः नौ परिवर्तन की सूचना देता है। क्योंकि नौ से अधिक अंक होता ही नहीं है। हमारे पूर्वज महान विदुषु थे। गणित में शून्य (जीरों) की शक्ति की खोज भी हिन्दुस्तान के महान गणितज्ञ आर्यभट्ट ने की थी, जो बिहार के निवासी थे। शून्य को अंक के बाद में लगाने से अंक का मान दसगुणा हो जाता है परन्तु शून्य को अंक से पहले लगाने पर अंक के मान में कोई परिवर्तन नहीं होता। एक से ' नौ अंकों ' का योग इक्यासी (81) बनता है। इक्यासी में दो अंक 8 तथा 1 होता है जिन का योग भी नौ आता है। अतः नौ के अंक की बड़ी ही महानता है। हमारा देश हिन्दुस्थान धर्म प्रधान, रीति रिवाजों वाला देश है। यहाँ सभ्यता में विविधिता तथा भाषाओं में अनेकता मिलती है। परन्तु अनेकता में एकता रखना हमारा राष्ट्रीय धर्म है। हमारे नित्य के जीवन में 'नौ' का क्या महत्व है ? के बारे में जानकारी इस प्रकार है –

1. शरीर की नौ अवस्थायें :– धर्म आधार शरीर ही होता है। सारे पुण्य और पाप शरीर से ही हुआ करते हैं। सभी के शरीर की नौ अवस्थायें हमारे पूर्वजों ने बतलायीं हैं –(1). गर्भाधान, (2). गर्भवृद्धि, (3). जन्म, (4). बाल्यावस्था, (5). कुमारावस्था, (6). युवावस्था, (7). प्रौढ़ावस्था, (8). वृद्धावस्था तथा (9). मृत्यु। पहली दोनों अवस्थायें गर्भाधान तथा गर्भवृद्धि माता के पेट में पूरी होती हैं। बच्चे के जन्म लेने से बारह वर्ष की आयु तक बाल्यावस्था होती है। तेरह वर्ष की आयु से सोलह वर्ष की आयु तक कुमार अवस्था या किशोरावस्था रहती है। उसके बाद चालीस वर्ष तक युवावस्था, पचपन या साठ वर्ष की आयु तक प्रौढ़ावस्था रहा करती है। मृत्यु होने तक की अवाधि को वृद्धावस्था कहा जाता है। बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था तक शरीर में अनेकों परिवर्तन होते रहते हैं परन्तु वृद्धावस्था में शरीर क्षीण होता रहता है। शरीरस्थ अंग

निष्क्रिय होते चले जाते है तथा अन्त में शरीर की मृत्यु हो जाती है। अत: शरीर की नौवीं अवस्था मृत्यु कहलाती है।

(2). धर्म के नौ भेद होते हैं :–

अक्रोध: सत्यवचनं सविभाग: क्षमा तथा ।
प्रजन: स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एव च ।।
आर्जवं भृत्यभाषणं नवैते सार्ववर्णिका: ।

अर्थात – (1). क्रोध न करना, (2). सदैव सत्य बोलना, (3). धन को बाँटकर भोगना, (4). सबसे समान व्यवहार करना, (5). अपनी ही पत्नि से सन्तान पैदा करना, (6). बाहर–भीतर से पवित्र रहना, (7). किसी से द्रोह न करना, (8). मृदुभाषी होना तथा (9). भरण पोषण योग्य व्यक्तियों का पूरा ध्यान ये सभी मनुष्यों को पालन करने ही चाहिये। इन धर्मों के पालन से मानव का कल्याण होता है।

(3). नौ का भरण–पोषण करना ही चाहिये – इनका भरण–पोषण करने से मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक दोनों फलों को प्राप्त करता है – (1). माता, (2). पिता, (3). गुरुदेव, (4). पत्नि, (5). सन्तान (6). शरणागतव्यक्ति, (7). अभ्यागत, (8). अतिथि तथा, (9). अग्नि– ये नौ पोष्य वर्ग कहलाते हैं। इनका भरण पोषण करना हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति अपने जीवन के साथ इनका भरण पोषण करता है उसका जीवन सार्थक होता है। देवता, तथा पितरों को अर्पण करने के बाद स्वयं उपभोग करने से ग्रहस्थ जीवन सफल बनता है। अपना पेट तो कुत्ता भी भर लेता है।

(4). नौ बातों पर सदैव ध्यान दें – घर में अभ्यागत के आने पर निम्न नौ बातों पर अवश्य ध्यान रखें। अभ्यागत आपका जाना पहचाना या रिस्तेदार नहीं होता। उसके साथ व्यवहार सादगी तथा धर्म समझ कर करें – (1). सौम्यव्यवहार, (2). सोम्यद्रष्टि, (3). सोम्यपमन, (4). सोम्य मुख, (5). उठकर स्वागत करें, (6). कृपया ' बैठिये ' आराम कीजिये, (7). सौम्यबातचीत, (8). साथ रहकर सेवा करें तथा (9). विदा करने कुछ दूरी तकसाथ चलें ये नौ बातें ग्रहस्थ के जीवन में चार चाँद लगा देती हैं। उसकी सर्वत्र प्रशंसा फलती हैं।

(5). नौ दुर्गुणों से सदैव बचें – (1). चुगल करना, (2). परस्त्री/परपुरुष सेवन, (3). द्रोह, (4). क्रोध, (5). असत्य भाषण, (6). कटुवचन, (7). वैमनस्य, (8). पाखण्ड तथा (9). छलकपट। ये नौ दुर्गुण स्वर्ग मार्ग के अवरोध माने जाते हैं। इनका त्याग करना ही कल्याण कारी है।

(6). **सद्ग्रहस्थ के नौ कर्म** – प्रत्येक गृहस्थ को निम्न कर्म करने ही चाहिये – (1). नित्यस्नान, (2). सन्ध्या–भगवतपूजा, (3). जप, (4). होम, (5). स्वाध्याय, (6). देवपूजा, (7). बलिवैश्यदेव, (8). अतिथि सत्कार तथा (9). पितृतर्पण।

सद्गृहस्थ के नौ धर्म सोपन – (1). सत्य, (2). शौच, (3). अहिंसा, (4). क्षमा, (5). दान, (6). दया, (7). दम (इन्द्रिय संयम), (8). अस्तेय (चोरी न करना), (9). प्रत्याहार (विषयी न बनना)।

जो मनुष्य मन, वाणी तथा कर्म से पवित्र होता है उसका सर्वत्र गौरव फैल जाता है। जिसके स्त्री पुत्र, भाई, बहन, पुत्री तथा सेवक सब विनम्र होते है वही इस असार संसार में पुण्यशील है। शराबपीना, दुष्टों का साथ, पति से अलग रहना, स्वच्छन्द घूमना, अधिक सोना, दूसरों के घर में रहना – ये छ: बातें स्त्रियों को अपवित्र करने वाली होती हैं। –

" पानं दुर्जन संसर्ग : पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्य गृहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ।। "

देवधन का उपभोग करने, ब्राह्मण के धन का अपहरण करने तथा ब्राह्मण का तिरस्कार करने से समूचे कुल का विनाश हो जाता है। वाणी की प्रतिज्ञा करके जो उसे पूरा नहीं करता वह इस लोक तथा परलोक में निन्दा का पात्र बनता है। स्नान के पश्चात जो जल द्वारा अपने पितरों का तर्पण नहीं करता वह दरिद्र बनता है। अग्नि के पास, गौशाला, यज्ञशाला तथा ब्राह्मण के पास जाने से पूर्व जूता –चप्पल उतार देने चाहिये। जो ग्रहस्थ नील में रंगे वस्त्र पहनता है उसके भजन, पूजन आदि के फल समाप्त हो जाते हैं।

(7). **इन नौ का विश्वास नहीं करना चाहिये –**

स्त्री धूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि ।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ।।

(1). स्त्री, (2). लम्पट, (3). आलसी, (4). डरपोक, (5). क्रोधी, (6). पुरुषत्व के अभिमानी, (7). चोर, (8). कृतघ्न तथा (9). नास्तिक ।

नारी शरीर कोमल तथा भावुक होता है। उसके अन्दर कोई रहस्य छिपा नहीं रह सकता। प्यार के आवेश में उस रहस्य को उगल जाती है तथा बाद में पश्चाताप करती है। लम्पट तो हर समय उलट सीध करते ही रहते हैं। उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। आलसी अपने आलस के कारण विश्वास को तोड़ डालता है। उसी प्रकार डरपोक भय से आक्रान्त अपनी बात से पलटी मार जाता है। क्रोध में मनुष्य अपना आपा ही खो बैठता है। उसके कारण काम बिगड़ जाता है। पुरुषत्व का अभिमानी वास्तविकता से हीन रहता है। उस पर

विश्वास नहीं किया जा सकता। चोर की वास्तविकता तो सभी जानते है। कृतघ्न तो अपने उपकारी का भी भला नहीं करता उसी प्रकार नास्तिक पर विश्वास करना , ईश्वर पर भरोसा न करना ही होता है।

(8). **नव दुर्गा या नवरात्रे** – हमारे हिन्दुस्तान में हिन्दुसमाज वर्ष में दो बार नवरात्रि या नौ दुर्गाओं का पूजन करता है। यह पूजन, वृत नौ दिनों तक लगातार चलता है। इसमे प्रत्येक दिन प्रथक प्रथक देवी का पूजन होता है। हमारा देश धर्म – प्रधान है। यहाँ सृष्टि मे बनाई गयी हर चीज की पूजा की जाती है। हम परमपिता परमात्मा के आभारी है जिसने हमारे जीवन के निर्वहन के लिये वह हर वस्तु दी है जिसकी हमें जीवन में आवश्यकता हुई हैं। ब्रह्माण्ड बनाने में प्रकृति पुरुष तथा नारी स्वरूपा प्रकृति का ही योगदान रहा है। प्रकृति स्वरूपा नारी को शक्ति नाम से जाना जाता है। मानव तथा देवों को जब जब जीवन में कोई संकट आया है तब तब उसने शक्ति की शरण ली है। उसी शक्ति को देवी कहा गया है। देवी दुर्गुणों का विनाष करती है। इसी कारण इन्हें दुर्गा कहकर । भी बोला जाता है। दुर्गा देवी के नौ अवतार माने जाते हैं जिनकी पूजा–अर्चना नवरात्रि के नौ दिनों में क्रमानुसार की जाती है। नौ स्वरूप इस प्रकार है – (1).शैलपुत्री, (2). बृह्मचारिणी, (3). चन्द्रघंटा, (4). कुष्माण्डा, (5). स्कन्दमाता, (6). कात्यायनी, (7). कालरात्रि, (8). महागौरी तथा सिद्धिदात्री । प्रतिवर्ष चैत्र तथा आश्विन मास के शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से नवरात्रे आरंभ होते हैं।

हमारे परमश्रद्धेय योगेश्वर योग सम्राट दादा गुरुदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का प्राक्टय दिवस हर वर्ष चैत्रशुक्ल नवमी को बड़े घूम धाम के साथ मनाया जाता है। इसी दिन प्रभू श्री रामचन्द्र जी महाराज प्रकट हुये थे। इसी कारण इसदिन को रामनौमी नाम से जाना जाता है।

(9). **नवधा भक्ति** – मनुष्य जन्म–मरण के बन्धन से मुक्ति पाने तथा परमपिता से नाता जोड़ने की आशा से अनेकों प्रकार से भक्ति करता है। परन्तु भक्ति भावना का मार्ग अपनी सरलता के कारण अधिक आकृष्ट करता है, उस भक्ति को नवधा भक्ति कहते हैं :–

" श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।। "

प्रभू के नाम गुणों का श्रवण, धर्मशास्त्रों का पठन–पाठन ही श्रवण भक्ति है। ईश्वर के नाम, लीला एवं गुणों का कीर्तन दूसरी भक्ति है। प्रभू के नामों–गुणों का स्मरण से तीसरी भक्ति तथा प्रभू के चरणों का ध्यान–चिन्तन चौथी भक्ति होती है। भगवान के श्री विग्रह का विधि विधान से पूजन पांचवी तथा जीव मात्र को भगवान का अंश मानकर श्रद्धाभाव से नमन या

प्रणाम करना वन्दन कोहि की भक्ति है। भगवान का दास्य मानकर भक्ति करना दास्य भक्ति होती है। हनुमान, भरत, लक्ष्मण, निशाद तथा शवरी आदि की दास्य भक्ति ही थी। तुलसी ने भी चाकर या गुलाम मानकर भक्ति की है। कबीर ने अपने को राम की-- बहुरिया कहा है। आवेश में आकर कभी-कभी कबीर साहब ने अपने को राम का कुत्ता कहा है।-

" वीरं कुत्ता राम का मुतिया मेरा नाउँ।

राम नाम की जेवड़ी जित खँचे तिति जाउँ ।। "

मीरा, भगवान कृष्ण को पतिरुप से भक्ति करती थी। अपना संसारिक पति होने पर भी उसने कृष्ण को पति कहने कोई लोक लाज नहीं रखी। भगवान से मित्रता का भाव रखकर की जाने वाली भक्ति को सख्यभाव की भक्ति कहते हैं। बृज की गोपियाँ गोप सुदामा तथा द्रोपदी की कृष्ण के प्रति भक्ति भी संख्यभाव की भक्ति थी। ब्रज के ग्वाल, वाल,गोपियाँ भगवान श्री कृष्ण कन्हैया को अपना सखा मानते थे -

जाति पांति हमसे बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।

अति अधिकार जनावत यातें, जातें अधिक तुम्हारें गैया ।।

राधा की कृष्ण के प्रति भक्ति माधुर्यभाव की भक्ति थी। यशोदा तथा कौशल्या की अपने पुत्र कृष्ण तथा राम के प्रति " वात्सल्यभाव " की भक्ति थी। ईश्वर के सामने अपनी पीड़ा बतलाना ही आत्मनिवेदन की भक्ति होती है। भक्त अपनी भक्ति में मन, कर्म और वाणी का सहयोग पाता है।

मन से आत्मनिवेदन, संख्य, दास्य, एवं स्मरण भक्ति की जाती है। वन्दन अर्चन ,श्रवण तथा चरण सेवन कर्म से होने वाली भक्ति होती हैं। संकीर्तन, कीर्तन वाणी से होने वाली भक्ति होती है। उस परब्रह्म परमात्मा की समीपता प्राप्त करना ही नवधा भक्ति है।

(10). **नवग्रह पूजन** – हमारी परम्परा रही है कि किसी भी शुभ कार्य में, प्रारंभ में नव ग्रहों को पूजा जाता है। सृष्टि बनते समय नवग्रहों की भी रचना हुई है।, मानव परोक्ष-अपरोक्ष रूप से इन ग्रहों से प्रभावित होता रहा है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सूर्य, चन्द, भंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु की गति से मनुष्य प्रभावित होते हैं। धर्मशास्त्रों की मान्यता है कि सुबह जागने पर नवग्रह शांति पाठ प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिये। ऐसा करने पर घर में सुख शांति बनी रहती है। पाठ इस प्रकार है-

" ब्रह्मा मुरारि त्रिपुरान्तकारि भानु शशि, भूमिसुतो, बुधश्च ।

गुरुश्च, शुक्रः, शनि, राहु, केतवः सर्व मम् कुरु शुभ प्रभातः ।। "

अर्थात सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, गुरु दानव को मारने वाले भगवान विष्णु, त्रिपुर राक्षस के संहारक भगवान सदाशिव, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति जी, शुक्र, शनिदेव, राहु तथा केतु सब मेरे सुबह को कल्याण कारी बनायें।

(11). शरीर के नौ द्वार होते हैं – मनुष्य के शरीर में नौ दरवाजे या नौ छिद्र होते हैं। दोनों नेत्र, दो नासाद्वार, दो कान, मुँह, गुदा द्वार तथा मूत्रस्थान– ये नवद्वार कहे जाते हैं। इनका अपना अपना महत्व है। इन्द्रियाँ शरीर की रखवाली करती हैं। रूप, रस, गन्ध, स्वाद, तथा स्पर्श इन्हीं के माध्यम से होते हैं। इच्छाओं से मन मचल उठता है। मनुष्य को पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ आकर्षित करती हैं तथा वह इन सबका सेवन करता है। शरीर के नवद्वार शरीर की गन्दगी को बाहर निकालने के साधन होते हैं। मृत्यु के समय पांच प्राण इन्ही नौ द्वारों से बाहर निकलते हैं। योगीमहात्मा इसी कारण से इन नौ द्वारों पर पहरेदारी की बातें करते हैं। योग में इन्ही नौ द्वारों को वश में करने का विधान है। जब इन शरीरस्थ नव द्वारों पर योगी नियंत्रण कर लेता है तब पाँचों प्राण मृत्यु काल में कपाल में स्थित ब्रह्मरन्ध्र से बाहर निकलते हैं। यही योगीत्व की पहचान है।

(12). नौ से विरोध करना उचित नही – (1). शस्त्रधारी, (2). मर्मी, (3). स्वामी, (4). मूर्ख, (5). धनी, (6). वैद्य, (7). कवि, (8). भाट तथा (9). रसोइया । समझदार व्यक्ति को इन नौ से विरोध नहीं करना चाहिये। शस्त्रधारक न मालूम कब हमला कर दे। मर्मी न मालूम कब गोपनीय बातें खोल दे। स्वामी कब दंडित कर बैठे। मूर्ख कब अपमान कर दे। धनवान से कब जरूरत पड़ जाए। वैद्य अथवा चिकित्सक दवाई के नाम जहर दे दें। कवि तथा भाट विरदावली की जगह निन्दपुराण सुनाने लगे। खाना बनाने वाला क्या पता खाने में जहर न घोल दे ?

(13). शिष्य में नौ गुण होने चाहिए – जिन शिष्यों में निम्न नौ गुण हों तभी उन्हें गुरुओं को शिष्य बनाना चाहिए। जब ये नौ गुण शिष्यों में नहीं होते तभी आपस में कटुता रहती है।

"अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसोहृद: ।
असत्वरोऽर्थ जिज्ञासुरन सूयुर मोघवाक् ।। "

शिष्य को (1). अभिमान से रहित, (2). किसी का अहित न करने वाला, (3). कार्य में निपुण, (4). ममतारहित, (5). गुरु में आस्था वाला, (6). कार्य में शीघ्रता न करे, (7). परमार्थ ज्ञान का इच्छुक, (8). दूसरे में दोष न निकालने वाला तथा (9). व्यर्थ की बात न करने वाला होना चाहिए। तभी शिष्य आसाकारी आज्ञाकारी तथा दक्ष अर्जुन जैसे होगें।

(14). नौ गोपनीय बातें – इन्हें किसी से प्रगट न करें। प्रगट करने से हानि हो सकती है। ये हैं – (1). अपनी आयु, (2). धन, (3). घर का रहस्य, (4). गुरुमंत्र, (5). मैथुन, (6).

औषधि, (7). तप, (8). दान तथा, (9). अपमान।

(15). नौ प्राकट्य बातें – इन्हें प्रकट करना ही हितकर रहता है। – (1). कर्ज लेने की बात, (2). कर्ज चुकाने की बात, (3). दान में प्राप्त वस्तु, (4). बेची गई वस्तु, (5). कन्यादान, (6). अध्ययन, (7). वृषोत्सर्ग, (8). एकान्त में किया गया पाप तथा, (9). अनिन्दित कर्म। वृष सांड को कहा जाता है। मृत व्यक्ति के नाम पर दागकर छोड़ा गया साँड, वृषोत्सर्ग कहा गया है।

(16). नौ सुपात्रों को दान दें – दान सदैव सुपात्र को ही दें। कुपात्र को दान देना हितकर नहीं होता। अत: दान के लिये सुपात्र हैं – (1). माता, (2). पिता, (3). गुरुदेव, (4). मित्र, (5). याचक, (6). उपकारी, (7). दीन, (8). अनाथ तथा , (9). साधु–महात्मा ।

(17). नौ कुपात्रों को दान न दें – (1). धूर्त, (2). बन्दी, (3). मूर्ख, (4). अयोग्य वैद्य, (5). जुआरी, (6). शठ, (7). लालची, (8). चारण तथा (9). चोर। इन्हें दिया दान निष्फल हो जाता है।

(18). नौ अदेय वस्तुयें – इन्हें आपत्ति काल में भी नहीं देना चाहिये – (1). जनता की सम्पति, (2). चन्दे की राशि, (3). धरोहर, (4). बन्धन की वस्तु, (5). पत्नि, (6). पत्नि का धन, (7). जमानत की वस्तु, (8). अमानत की वस्तु तथा (9). सन्तान के होने पर अपनी सम्पत्ति।

(19). नौ प्रजापति – (1). अत्रि, (2). अंगिरा, (3). मरीचि, (4). पुलस्त्य,(5). पुलह, (6). क्रतु, (7). भ्रगु, (8). वशिष्ठ तथा, (9). प्रचेता – इन नौ प्रजापतियो को ब्रह्मा जीने मानस संकल्प से पैदा किया था। इनसे सृष्टि का विस्तार तथा रक्षण होता है।

(20). नौ पवित्र नदियाँ – ये नौ नदियां सभी को पवित्र करती हैं –

गंगा सिन्धुश्च कावेरी यमुना च सरस्वती ।
रेवा महानदी गोदा ब्रह्म पुत्रः पुनातु माम् ।।

अर्थात् गंगा, सिन्धु, कावेरी, यमुना, सरस्वती, रेवा, महानदी, गोदावरी, तथा ब्रह्मपुत्र नदियाँ मुझे पवित्र करें।

(21). नौ के गुणनफल के अंकों का योग नौ ही आता है –

आप नौ के अंक का किसी भी अंक या संख्या से गुणा करें। गुणनफल के अंको का योग नौ ही होगा। इससे सिद्ध होता है कि " नौ का अंक " महान तथा अपरिवर्तन शील है। जैसे ब्रह्म सत्य है उसी प्रकार नौ भी सत्य है।

श्री सद्गुरु देव जी के पावन चरणों में साष्टांग नमन तथा गुरु भाइयों को

जय गुरुदेव !

पावन तुम्हारा नाम प्रभो

– श्रीमती शारदा सज्जन सिंह सिसौदिया, इन्दौर

पावन तुम्हारा नाम प्रभो
पावन तुम्हारा धाम
जग से न्यारा
सबसे प्यारा नाम प्रभु
सर्व शक्तिमान प्रभु

जग ने किया किनारा
तब आपने दिया सहारा
जहाँ खिलती योग की कलियाँ
भक्ति के पुष्प महक उठते

आनंद रस में जन जीवन
प्रकृति डूब जाती
समय की हस्ती भी
अपना अधिकार छोड़ देती
पावन पावन नाम प्रभो

जगमग करती निर्मल ज्योति तुम्हारी
जन जन को शांति का संदेश देती
भूले भटकों को राह दिखाती
उन्हें अपने गंतव्य पर पहुँचाती
तुम्हारी वाणी

चिर शांति का संदेश देती
उदास मन को सहारा देती
कल कल धारा सी बहती
तुम्हारी वाणी

अमर संदेश दे
जीवन ज्योति जगाती
लाल चूनर सी ओढ़ा
देती तुम्हारी वाणी

हौसला बढ़ा देती
भुला देती सारे गम
शुभ संदेश देती
हमारा सहारा बनती
तुम्हारी वाणी

आगे बढ़ जाते
हमारे कदम
पावन पावन तुम्हारा नाम

पावन पावन तुम्हारा धाम जग से न्यारा
सबसे प्यारा धाम, सर्वशक्तिमान प्रभो।

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्।
गावो भतं च भव्यं च गावः पुष्टिः सनातनी।।

अर्थात् गौएँ समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठा (आधार) हैं और गौएँ ही उनके लिए महान् मंगल की निधि हैं। गौएँ ही भूत और भविष्य हैं। गौएँ ही सब समय पुष्टि का साधन हैं।

गौ–सेवा करिये और राष्ट्र को सुरक्षित एवं सम्पन्न बनाइये।

मध्यम श्रेणी के प्रबन्धकों के लिये प्रबन्धन सूत्र

– डॉ. राजकुमारी त्रिखा, नई दिल्ली – 110021

मध्यम श्रेणी का प्रबन्धक योजना बना कर कच्चा माल तथा मशीनें आदि उत्पादन में सहायक उपकरणों को जुटा कर कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। ये सब कार्य करने से पहले वह संस्था के स्वामी की अनुमति लेता है। उत्पादन अच्छी गुणवत्ता वाला तथा अधिक मात्रा में हो, इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त वह कर्मचारियों को परिश्रम से, मनोयोग पूर्वक तथा समर्पणभाव से अधिक उत्पादन करने के लिये अभिप्रेरणा देता है। एक कुशल प्रबन्धक ही सब कार्य प्रभावी ढंग से कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में अभिप्रेरणा (MOTIVATION), मानवसंसाधन प्रबन्ध, (HUMAN RESOURCES MANAGEMENT), कार्य सम्पादन नीति (WORK ETHICS), आत्म समायोजन (SELF MANAGEMENT) नेतृत्वगुण (LEADERSHIP MANAGEMENT), आदि प्रबन्धन के आवश्यक तत्वों के विषय में प्रभावकारी तथा बहुमूल्य जानकारी मिलती है।

मानवसंसाधन प्रबन्धन – कार्य सम्पादन के लिये कुशल तथा ईमानदार कर्मचारियों की नियुक्ति उत्पादन की दिशा में महत्वपूर्ण व्यावहारिक कदम है। प्रबन्धक को अपने कर्मचारियों के गुणों का, विशिष्ट ज्ञान तथा स्वभाव का ज्ञान होना चाहिये। जो व्यक्ति जिस कार्य में कुशल हो, उसकी जिस कार्य में रुचि हो, उस व्यक्ति को, उसी कार्य में नियुक्त करना चाहिये। कौटिल्य भी कहते हैं –

यो यस्मिन् कर्मणि कुशलस्तं तस्मिन्नेव नियोजयेत।
दु:साधमपि सुसाधं करोति उपायज्ञ: ।। कौटिल्यार्थ सूत्र, 47.48

दैवी सम्पत् वाले सात्त्विक कर्मचारियों की ही नियुक्ति करनी चाहिये। प्रत्येक मनुष्य के अपने निजी गुण धर्म होते हैं। तदनुसार गुण तथा कर्म के आधार पर मनुष्यों को चार वर्गों में बाँटा जाता है। ज्ञान के उपासक अर्थात् ब्राह्मण, वीर योद्धा अर्थात क्षत्रिय, व्यापारकुशल अर्थात् वैश्य, तथा सेवा कर्म विशेषज्ञ अर्थात् शूद्र। गीता भी गुण तथा कर्म के आधार पर चातुर्वर्ण्य की चर्चा करती है –

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:। श्रीमद्भगवद् गीता 4.13

इससे ज्ञात होता है कि प्रत्येक व्यक्ति केवल आर्थिक लाभ के लिये ही लालायित नहीं रहता। भिन्न–भिन्न प्रकृति के मनुष्यों का उल्लेख करते हुए, श्रीकृष्ण कहते हैं –

चतुर्विधा: यजन्ते मां जना: सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो, जिज्ञासरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ। श्रीमद्भगवद् गीता, 7.16

अत: प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रुचि,योग्यता तथा क्षमता के अनुसार कार्य सौंपना

चाहिए। वर्ण व्यवस्था के कारण, अपने परम्परागत धन्धे का विशिष्ट ज्ञान, पुत्र को अपने पिता से, बाल्यकाल से मिलने लगता है। इस प्रकार प्राय: परम्परागत व्यवसाय में व्यक्ति की रुचि और विशिष्ट ज्ञान दोनों ही पाये जाते है। परन्तु कार्य कुशलता के साथ–साथ ईमानदारी भी आवश्यक है।

मनुष्य के स्वभाव तथा गुणों का ज्ञान उसके आचरण से हो जाता है। कुछ लोग आसुरी वृत्ति के होते हैं, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि में आकण्ठ डूबे रहते हैं। प्रबन्धक का कर्तव्य है कि वह आसुरी वृत्ति के लोगों को नहीं, बल्कि देवी सम्पत् सम्पन्न, सज्जन, जितेन्द्रिय व्यक्तियों को नियुक्त करे, ताकि वे कुशलतापूर्वक, समर्पणभाव से संस्था में काम करें। द्रष्टव्य – गीता 16 वाँ अध्याय।

वस्तुत: मनुष्य सत्त्व, रजस् तथा तमस् गुण की प्रधानता के कारण तीन प्रकार के होते हैं। (द्रष्टव्य गीता 17 वाँ अध्याय)। सतोगुण प्रधान सात्त्विक तथा उत्तम ; रजो गुण प्रधान राजसिक अर्थात् मध्यम ; तथा तमोगुण प्रधान अर्थात् तामसिक और निकृष्ट। इनकी पहचान भी इनके आचरण से ही होती है। मनोयोगपूर्वक कार्य न करने वाला, अशिक्षित, घमण्डी, धूर्त, दूसरों की आजीविका नष्ट करने वाला, विषाद से भरा रहनेवाला, आलसी तथा आज का काम, कल पर टालने वाला व्यक्ति तामस कर्ता होता है।

अयुक्त: प्राकृत: स्तब्ध: शठो नैष्कृतिकोऽलस: ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ।। श्रीमद्‌भगवद् गीता 18.28

ऐसा कर्मचारी कामचोर होने के कारण, कभी समय पर निर्धारित कार्य पूरा नहीं कर सकता, अत: त्याज्य है।

मध्यम कोटि का राजसकर्ता, रजोगुण प्रधान, कर्मफल की आसक्ति वाला, रागपूर्ण, लोभी, परपीडक, अशुद्ध आचरण वाला, तथा हर्ष और शोक से अभिभूत होने वाला होता है।

रागी कर्मफलप्रेप्सु: लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचि: ।
हर्षशोकान्वित: कर्ता राजस: परिकीर्तित: ।। श्रीमद्‌भगवद् गीता 18.27

ऐसा व्यक्ति आर्थिक लालच से औसत कार्य करेगा। अत: आवश्यकतानुसार उसकी नियुक्ति की जा सकती है।

सात्त्विक कर्ता श्रेष्ठ कर्मचारी होता है। वह संग रहित, अहंकार के वचन न बोलने वाला, धैर्य और उत्साह से युक्त, तथा कार्य की सफलता तथा विफलता के प्रति समत्व भाव रखने वाला होता है। ऐसा सन्तुलित बुद्धि वाला व्यक्ति ही पूर्ण एकाग्रता के साथ कार्य कर सकता है।

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वित: ।
सिद्ध्यसिद्ध्यो निर्विकार: कर्ता सात्त्विक उच्यते ।। श्रीमद्‌भगवद् गीता 18.26

ऐसा कर्मचारी निश्चित ही मन लगा कर समर्पण भाव से कार्य करता है तथा संस्था के

लिए एक निधि के (ASSET) समान है, अतः संग्रहणीय है।

मानवसंसाधन प्रबन्धन का महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि श्रेष्ठ कर्मचारियों को संस्था में नियुक्त किये रखा जाये, उनको नौकरी से निकालें नहीं, चाहे वर्तमान में हाथ का प्रोजेक्ट पूरा हो जाने के कारण, उनके लिये कोई काम न भी बचा हो। भावी योजनाओं व कार्यों के सम्पादन के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, उनको संस्था में रखे रहें। निष्ठावान् कार्यकर्ताओं का मिलना अत्यन्त दुर्लभ होता है। अतः श्रेष्ठ प्रबन्धन वही है, जो दैवी सम्पत–सम्पन्न, सात्त्विक प्रवृति के कार्यकर्ताओं का संग्रह करे।

अभिप्रेरण (MOTIVATION) – श्रेष्ठ कार्यकर्ताओं को अपनी पूरी शक्ति से, मनोयोगपूर्वक कार्य करने की अभिप्रेरणा भी एक कुशल प्रबन्धक ही दे सकता है। हर्जबर्ग (HERZBERG) नामक विद्वान् का कथन है – नौकरी की सुरक्षा, कार्य करने के वातावरण की अनुकूलता, उचित मात्रा में लाभांश प्राप्ति, बोनस, इत्यादि कर्मचारियों के रखरखाव के तत्त्व (MAINTAINANCE FACTORS) हैं, जिनके अभाव में कर्मचारियों की कार्यक्षमता घटती है। इनके अतिरिक्त कुछ उत्प्रेरक तत्त्व, (MOTIVATIONAL FACTORS) होते हैं, जो कर्मचारियों को अधिक कार्य करने के लिये प्रेरित करते हैं, जैसे– चुनौतीपूर्ण कार्य, उपलब्धि, मान्यता, उत्तरदायित्व, व्यक्तिगतविकास का अवसर (प्रशिक्षण आदि) इत्यादि। कर्मचारियों की मूलभूत आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा, मकान इत्यादि), की पूर्ति के साथ–साथ उनकी अन्य मानसिक तथा भावात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति भी उत्प्रेरक तत्त्व है। अपनत्व, मित्रता, स्नेह, स्वीकृति उनकी सामाजिक आवश्यकताएँ हैं। स्वाभिमान, प्रशंसा, अहंतुष्टि, स्वतन्त्रता आदि भावात्मक उत्प्रेरक तत्त्व हैं। उन्नति,सतत विकास का अहसास, अपनी कार्यक्षमता का पूरा उपयोग करने का अवसर मिलना आदि आवश्यकताएँ पूरी होने पर कर्मचारी प्रसन्न मन से, मन लगा कर कुशलतापूर्वक, परिश्रम से कार्य करने के लिये अभिप्रेरित (MOTIVATE) होता है। गीता के उपदेश ने भी अर्जुन की अहंतुष्टि की थी, तथा युद्ध के लिये प्रेरित किया था। अतः कर्मचारियों को स्नेहपूर्वक, उनकी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए, कुशलतापूर्वक कार्य करने की प्रेरणा देनी चाहिये। यदि कभी किसी कर्मचारी से कोई कार्य सन्तोषजनक ढंग से पूरा न हो पाये, वह कार्यकुशल न हो, तो भी उसे हतोत्साहित नहीं करना चाहिए। उसे काम करने का प्रशिक्षण देकर कुछ देर अभ्यास करने दो। अभ्यास से वह कार्य करना सीख लेगा।

अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते ।। श्रीमद्भगवद् गीता 6.35

सम्भव है कि कुशलता प्राप्त करने में उसे कुछ समय लग जाये, परन्तु मनोयोगपूर्वक अभ्यास करने से वह कुछ ही समय में, कार्यकुशल बन जायेगा। गीता कहती है –

तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।। श्रीमद्भगवद् गीता 4.38

स्पष्ट कार्य सम्पादन नीति :– एक कुशल प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को, कार्य नीति

समझाता है। संस्था को उनसे क्या आशाएँ हैं, कितना तथा कैसा कार्य, कब तक करना है, यह सब भी समझाना आवश्यक है। कार्य विधि बता कर ही उनसे कार्य करवाया जा सकता है। अतः प्रबन्धक का कर्तव्य है कि वह अपने कार्यकर्ताओं को इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी दे। वह उन्हें समझाये कि कार्य उत्कृष्ट कोटि का होना चाहिये। उत्कृष्टता एक ईश्वरीय गुण है। गीता कहती है –

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ।। श्रीमद्भगवद् गीता 10.41

काम में उत्कृष्टता हो, इसके लिये आवश्यक है कि कर्मचारी मनोयोग से, अनासक्त भाव से, ईश्वर की पूजा समझ कर अपना कार्य करें। काम पूरा हो जाने के बाद फल के रूप में मिलने वाली सफलता की ओर ध्यान न दें। उनका मन केवल कर्म पर ही एकाग्र रहे। राग, द्वेष रहित होकर कार्य करना ही योगसाधना है –

योगः कर्मसु कौशलम् । श्रीमद्भगवद् गीता 2.50

फलप्राप्ति की ओर ध्यान न देते हुए कार्य करना अत्यन्त दुष्कर है। परन्तु यह आवश्यक भी है कि फलासक्ति त्याग कर कार्य किया जाये। यदि कार्य करते समय मन कार्य के फल की आशा तथा कल्पना में उलझा रहे, तो कार्य उत्कृष्ट कोटि का नहीं होगा,क्योंकि कर्ता की आंशिक चेतना ही कर्म में लगेगी, तथा आंशिक चेतना फलप्राप्ति की कल्पना में उलझी रहेगी।

अनासक्त भाव से कार्य न करने पर,यदि कार्य का फल मनोनुकूल न मिले, तो कर्ता को असीम दुःख होता है। क्योंकि मनुष्य के वश में केवल कर्म करना ही है, उसका फल पाना नहीं। गीता कहती है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।। श्रीमद्भगवद् गीता 2.47

जैसे खेत में हल चला कर बीज बोना तो किसान के वश में है, परन्तु फसलरूप में उसका फल पाना नहीं। इसका कारण है कि फल प्राप्ति में अनेक विघ्न आ सकते हैं, जिन पर किसान का कोई वश नहीं है, जैसे – पक्षियों द्वारा बीज चुगा जाना, बीज का जल में बह जाना, फसल पकने पर आग लग जाना, अथवा चोरी हो जाना। ऐसी स्थिति में कर्म का फल पाना कर्ता के वश में नहीं है। यदि फल के प्रति आसक्ति हो, तथा फल न मिले, तो दुःख के कारण, हृदयाघात, मस्तिष्काघात, मृत्यु, अथवा आत्महत्या तक की सम्भावना हो जाती है। अतः यह आवश्यक है कि कर्म करते समय, कर्ता का ध्यान केवल कर्म पर ही केन्द्रित रहे, फल पर नहीं। तभी कर्म उत्कृष्ट कोटि का होगा। जब कर्म उत्कृष्ट होगा तो फल भी उत्कृष्ट ही मिलेगा। काम करने का तकनीकी ज्ञान, तथा परिश्रम पूर्वक कार्य करने के अतिरिक्त, कार्य के प्रति निष्ठा, तथा समर्पण का भाव भी कर्म में उत्कृष्टता का सहायक साधन है। ज्ञान कर्म और भक्ति का समन्वय, मणिकांचन संयोग है, जो कार्य की गुणवत्ता बढ़ाता है।

कर्म के प्रति भक्तिभाव से उत्कृष्टता प्राप्त होती है। यदि पूर्णभक्तिभाव नहीं है, तो उसका अभ्यास करना चाहिए । यदि यह भी सम्भव न हो, तो अपने कार्य को अपने ईश्वर अर्थात् लीडर की सेवा समझ कर करो। यदि यह भी कठिन लगे तो अपने कार्य का फल अपने लीडर को समर्पित करो। गीता के 12 वें अध्याय में आठ से ग्यारह श्लोकों तक, इस प्रक्रिया का वर्णन मिलता है।

मय्येव मन: आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय......इत्यादि ।

प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। निष्काम भाव से किया गया कर्म भी कुछ न कुछ फल अवश्य देता है। अपने निष्काम कर्म के फल को त्याग भाव से, लोभरहित होकर, ईश्वर का प्रसाद समझ कर ग्रहण करो।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्व परिग्रह:।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।। श्रीमद्भगवद् गीता 4:21

कर्मचारियों को यह भी समझाया जाना चाहिये, कि वे कर्म के प्रति अहंकार तथा कर्तृत्वाभिमान न रखें, क्योंकि अहंकार आपसी झगड़े तथा मनमुटाव का मूल कारण होता है, जो कर्म का श्रेय न मिलने पर कर्म के प्रति उत्साह भंग कर देता है।

पापेन जायते व्याधि: पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दु:खं शोको भयंकर:।।

अर्थात् पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है। पाप से रोग होता है, पाप से बुढ़ापा आता है और पाप से ही दैन्य, दु:ख एवं भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है।

शुभ सूचना

बड़े हर्ष के साथ सूचित करते हैं कि प्राणधन सद्‌गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के 106 वें प्राकट्‌य दिवस के उपलक्ष्य में श्री सिद्धगुफा संवाई धाम में 15 अक्टूबर से 21 अक्टूबर तक श्री मद्‌भागवत योग यज्ञ का आयोजन हो रहा है। कथा प्रवक्ता परम भागवत् आचार्य श्री पुरुषोत्तम शरण होंगे जो अपने सुमधुर कण्ठ से संगीतमय कथा का श्रवण करायेंगे। 22 अक्टूबर को गुरुदेव का जन्मोत्सव पूजन एवं भण्डारे का कार्यक्रम रहेगा। अतः सभी गुरुभक्तों से आग्रह है कि उक्त कार्यक्रम में सम्मिलित होकर पुण्य व श्रेय के भागी बनें।

जय गुरुदेव जी की !

निवेदक

आचार्य दासलाल

एवं

श्री सिद्धगुफा संवाई समस्त ब्रह्मचारी गण

स्वास्थ्य

योग-आसन

पश्चिमोत्तानासन

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ, दोर्भ्यां पदा ग्रद्वितय गृहीत्वा।।

जानूपरि न्यस्त ललाटदेशो, बसेदिदं पश्चिमोत्तानमाहु:।।

अर्थात् अपने दोनों पैरों को लम्बे भूमि पर फैलाकर दोनों हाथों से फैले हुए दोनों पैरों के अंगूठों को इस प्रकार तनाव के साथ पकड़ें कि पैर सिकुड़ने न पायें। उसके बाद अपने मस्तक को दोनों घुटनों के बीच लगा दें। इसी को पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

करने की विधि – अपने दोनों पैरों को लम्बे फैलाकर व अपने दोनों हाथों को ऊपर की ओर से तनाव के साथ लाकर अपने फैले हुए दोनों पैरों के अँगूठे को इस प्रकार खींचकर पकड़ें कि फैले हुए पैर सिकुड़ न सकें उससे अपना ललाट देश (शिर) दोनों घुटनों के बीच में लगा दें, इसी को पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

अभ्यास का समय – अपने शरीर के बलाबल को देखकर आधे मिनट या 20 सैकेण्ड से प्रारम्भ करें व प्रतिदिन पाँच या सात सैकण्ड बढ़ाते चले जायें और दो मिनट तक ले जायें। परमार्थ दृष्टि से करने वाले जिज्ञासु साधु लोग अभ्यास बढ़ाकर इसे आधा घण्टा व घण्टा तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ –

इति पश्चिमोत्तानासनाग्रय, पवनं पश्चिम वाहिनं करोति।

उदयं जठरानलस्य कुर्यादुदरे, कार्श्यमरोगता च पुंसाम्।।

अर्थात् यह उत्तमोत्तम पश्चिमोत्तान वायु को पश्चिमवाही करके जठराग्नि को बढ़ाता है, और पेट पतला करता है। पहिले जानुशिरासन में बतलाये लाभ इस आसन के अभ्यास से प्रायः सभी ही प्राप्त होते हैं। वायु को पश्चिमवाही करना कुण्डलनी जागृति का कारण बनता है। स्नायु मण्डल कोमल होकर उत्तमोत्तम रस रक्त का वहन करता है।

कालजयी महाप्रभु द्वारा काल पर विजय

प्रेषक–वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर)

अकारण दयालु योग योगेश्वर, परम पिता परमेश्वर के विग्रह स्वरूप का दर्शन, पूजन मनन चिन्तन करना उन करूणा सागर सद्गुरुदेव की कृपा का प्रसाद है।

गुरुदेव भगवान के चरणोदक की एक बूंद पाने के लिए कितने जन्म लेने पड़ते हैं, तब जाकर श्री गुरुदेव भगवान का सानिध्य प्राप्त होता है। जब मनुष्य का पूर्ण भाग्योदय होता है तब जाकर कहीं सिद्धों की संगत मिलती है और उन सिद्धों की कृपा के द्वारा ही परिपूर्ण सद्गुरुदेव भगवान का सानिध्य प्राप्त होता है।

उत्तर प्रदेश प्रान्त के अर्न्तगत इलाहाबाद जनपद में एक छोटा सा गाँव उमापुर गंगा नदी के तट पर स्थित है। इसी गाँव में आज से लगभग दो वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण बालक पर योग योगेश्वर दादा गुरुदेव भगवान ने अहैतुकी कृपा की। इस लेख का मुख्य विषय भी यही है, कि कालजयी महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज अनाथों के नाथ त्रिभुवनपति योगेश्वर किस प्रकार अपने प्यारे बच्चों पर अहर्निश संकट में रक्षा किया करते हैं।

घटना सन् 2006 अक्टूबर माह दिनांक 2.10.06 दिन सोमवार की है। जब एक बालक को अचानक तेज बुखार एवं शरीर में कम्पन आरम्भ हुआ तथा असह्य पीड़ा से शरीर व्याकुल हो रहा था, वह ब्राह्मण बालक जिसका नाम आशुतोष द्विवेदी है।

वह पूर्व की भाँति अपने घर के कमरे में लेटा हुआ प्रभु चिन्तन में था और उसी कमरे में महाप्रभु योगयोगेश्वर दादा गुरुदेव भगवान एवं हमारे और आपके तथा प्राणि मात्र के भाग्य विधाता योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं जगतनियन्ता जगत् सदगुरु सदा शिव भगवान का स्वरूप विराजमान था। स्वास्थ्य ठीक होने से पूर्व यह बालक जिसका नाम आशुतोष द्विवेदी है प्रभु जी द्वारा निर्देशित दिनचर्या का यथावत पालन करता रहता। दैनिक आरती, प्रातः पौने चार बजे उठकर दैनिक क्रिया से निवृत्त होकर सही और सुचारु रूप से कार्य पूर्ण करना अपनी जिम्मेदारी न समझकर प्रभुजी के आदेशों का पालन करना अपनी दिनचर्या और स्वभाव में ढाल लिया, यह सब कार्य करते हुए पढ़ाई लिखाई करना तथा गृहस्थी के कार्यों में लगा रहना प्रभु की इच्छा मानकर हर कार्य करता।

जैसा कि पहले ही बतलाया गया है कि 2 अक्टूबर सन् 2006 दिन सोमवार से अचानक तबियत बिगड़ती चली गई। यह क्रम लगभग 25 दिनों तक जारी रहा, मन बोझिल शरीर सूख कर कांटा की तरह हो गया, गांव के छोटे–मोटे डाक्टरों को दिखाने के बावजूद भी कुछ फायदा नहीं हुआ, दवा ज्यों–ज्यों दी जाने लगी मर्ज त्यों–त्यों ही बढ़ता गया।

इधर गाँव के कुछ लोग उलाहना देने लगे, कि प्रभुजी के भक्त होते हुए भी बीमार हो

गये, हास्यास्पद, भावों से बोलते तथा छूआछूत की बीमारी मानकर पास में देखने भी न आते।

इस तरह वह शुभ दिन आ गया अनाथों के नाथ दीनानाथ योगयोगेश्वर परम पिता परमेश्वर महाप्रभु की असीम कृपा 27 अक्टूबर सन् 2006 को इस बालक पर हुई।

रात में करीब दो ढाई के बीच गहरी निद्रा लगी तथा स्वप्न में महाप्रभु जी चिन्मय स्वरूप में आकर विराजमान हो गये, उसी समय भयानक आकृति वाला यमराज आकर घर के आंगन वाले हिस्से में दिवार के पास खड़ा हो गया, जिसका रूप विदीर्ण भयानक चेहरा सर पर दो सींग तथा हाथ में गदा लिए हुए वह पीड़ित बालक आशुतोष की ओर देख रहा था।

इधर चारपाई के पास महाप्रभु जी खड़े हुए थे ज्यों ही यमराज ने बढ़ना प्रारम्भ किया, तभी योग योगेश्वर महाप्रभु जी कुछ बोले तथा बालक स्वप्न में सब कुछ देख रहा था। तब तक महाप्रभु जी ने अपने चिमटे से उस दूत पर प्रहार किया। तो उस दूत की छाया ही रह गई। बाद में सब कुछ समाप्त हो गया। उसके बाद महाप्रभुजी ने बालक से कहा कि डरने की कोई बात नहीं सब कुछ ठीक हो जायेगा। इधर सुबह होती स्वास्थ्य ठीक हो गया।

दयालु दीन बन्धु के बड़े विशाल हाथ हैं।
अनाथ कौन है, यहाँ अनाथ नाथ साथ हैं।।
बन्दऊँ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुँज जासु वचन रवि कर निकर।।

मैं उन सद् गुरुदेव भगवान के चरण कमल की वन्दना करता हूँ जो कृपा समुद्र और दाता कुबेर से भी बढ़कर हैं और नर रूप में श्री हरि परम ब्रह्म परमेश्वर हैं जिनके वचन मात्र से समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। सद्गुरुदेव भगवान उस घने अंधकार के नाश करने के लिए स्वयं भास्कर हैं।

उन कृपा सागर गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में दीनता पूर्वक याचना करता हूँ कि अबोध बालक समझकर अपनी चरणों में निशदिन लगाये रखें तथा सुविज्ञ पाठकों एवं लेखकों से विनम्र निवेदन है कि लेख की त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए क्षमा करने की महती कृपा करें।

अरे मनुष्यो! तुम लोग जन्म–जन्मान्तर से अज्ञानरूपी निद्रा में सोये हुए हो। अब भी समय है। उठो, जागो और महापुरुषों की शरण में जाकर उनके उपदेश द्वारा अपने कल्याण का मार्ग और परमात्मा का रहस्य समझ लो। परमात्मा का रहस्य बड़ा गहन है, उसकी प्राप्ति का मार्ग तलवार की तेज धार पर चलने के समान है। ऐसे दुस्तर मार्ग से सुगमतापूर्वक पार होने का उपाय वे अनुभवी महापुरुष ही बता सकते हैं, जो इस मार्ग को स्वयं पार कर चुके हैं।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

आसीनो दूरं व्रजति शयनो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ।।

(कठोपनिषद् 1/21)

परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति हैं और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। इसी से वे एक साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान बताये गये हैं। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं। परमधाम में निवास करने वाले पार्षद भक्तों को दृष्टि में वहाँ शयन करते हुए ही वे सब ओर चलते रहते हैं। अथवा वे परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं।

संस्थापक:- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र.(डॉ.) रामलाल शर्मा